ओ३म्

# महर्षि दयानन्द सरस्वती

अर्थात्

श्रीस्वामी जी से सम्बन्ध रखने वाली कुछ बातों
का विशेष विवरण

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महेश प्रसाद
मौलवी आलिम फ़ाज़िल

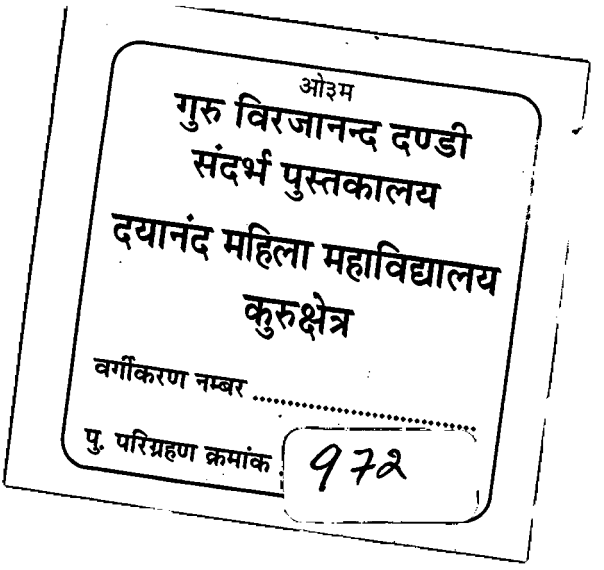

ओ३म
गुरु विरजानन्द दण्डी
संदर्भ पुस्तकालय
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र
वर्गीकरण नम्बर ..............................
पु. परिग्रहण क्रमांक 972

ओ३म्

# [redacted] दयानन्द सरस्वती


लेखक

**महेश प्रसाद**

मौलवी आलिम फ़ाज़िल

हिन्दू यूनीवर्सिटी बनारस



972



प्रकाशक

**आलिम फ़ाज़िल बुक डिपो**

मुहतशिमगञ्ज, इलाहाबाद सिटी



डा० भवानीलाल भारतीय

संख्या ............

तिथि ............

पुस्तकालय ............



आर्य सम्वत्सर १९७२९४९०४२

दयानन्दाब्द ११७

प्रथमावृत्ति १००० | सं० १९९८ वि० सं० १९४१ ई० | दाम ।॥) [redacted]

ओ३म्
माननीय चचा
श्री रघुबीरप्रसाद जी
की
पुण्य स्मृति में
सादर समर्पित

# भूमिका

"श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज बहुत बड़े महा पुरुष थे" इस बात को बहुतेरे लोग क्योंकर मानते या जानते हैं? केवल एक दूसरे से सुन-सुनाकर। मेरा ख्याल है कि यदि कोई व्यक्ति उन के जीवन-चरित्र तथा उनके कार्यों पर भली भांति दृष्टि डाले तो उन की महत्ता को जितना वह समझता है उस से कहीं अधिक केवल वही न मानेगा बल्कि दूसरों को भी मनवा सकेगा।

श्री स्वामी जी महाराज की बाबत अब तक बहुत कुछ लिखा गया है और प्रत्येक वर्ष कुछ न कुछ और लिखा जाता है परन्तु विचार करने से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अभी उन के विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है। अस्तु, इसी बात का फल है कि कुछ नवीन बातें जनता के सन्मुख रख रहा हूँ।

हाँ, मुझे प्रसन्नता होगी यदि कोई सज्जन श्री स्वामी जी महाराज के विषय में कुछ और कार्य करें, और जो कुछ मैं ने बतलाया है उस पर अधिक प्रकाश डालें। ऐसा होने से निस्सन्देह श्री महाराज की महत्ता अधिक बढ़ेगी।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी
मार्गशीर्ष कृष्ण ३ सं०
१९९८ वि०

महेश प्रसाद
मौलवी आलिम फाजिल

# विषय-सूची

## प्रथम खण्ड


१—प्रथम अध्याय—जन्म तथा कार्यकाल १

२—द्वितीय अध्याय—ग्रन्थ १५

(१) पुस्तक रूप में लिखित सामग्री १५

(२) पुस्तक रूप में शास्त्रार्थ ४४

३—तृतीय अध्याय—पत्र-व्यवहार ५०

४—चतुर्थ अध्याय—मनोरंजक व अनोखी बातें ८०


## द्वितीय खण्ड


१—भूमिका ९३

२—प्रथम अध्याय—स्वामी दयानन्द और बाइबिल ९६

३—द्वितीय अध्याय—स्वामी दयानन्द और कुरान १०२

४—परिशिष्ट (१)—कुछ तिथियाँ ११७

५—परिशिष्ट (२)—कुछ अन्य बातें १२२


सन् 1941

ओ३म्

# महर्षि दयानन्द सरस्वती

## प्रथम खण्ड

### प्रथम अध्याय

### जन्म तथा कार्य काल

श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का जन्म संवत् १८८१ वि० ( सन् १८२४ ई० ) में हुआ। इस सम्वत् व सन् के आस-पास के समय में दिल्ली के राज-सिंहासन पर मुहम्मद अकबर ( द्वितीय ) मुगल बादशाह था किन्तु उसकी शक्ति नाम मात्र थी। अंग्रेजों की शक्ति बढ़ रही थी * परन्तु ज्ञात रहे कि राष्ट्रीय दृष्टि से अंग्रेज जितने बढ़ रहे थे उससे कहीं अधिक ईसाई लोग धार्मिक विचार से बढ़ रहे थे। लगभग २५ भारतीय भाषाओं में पूर्ण बाइबिल अथवा उसके किसी खण्ड का अनुवाद हो चुका था। इनमें से कुछ भाषायें उन लोगों की थीं जिन पर अंग्रेजों का अधिकार राष्ट्रीय दृष्टि से नहीं हुआ

* इस समय का अंग्रेज़ी राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य कहलाता था। उक्त समय लार्ड अमहरेस्ट गवर्नर जनरल थे।

था। उदाहरणार्थ जानना चाहिये—काश्मीरी, पश्तो और राजस्थानी भाषायें।

प्रायः यह देखा जाता है कि जो बात संस्कृत शब्दों में हो वह अधिक माननीय अथवा आदरणीय समझी जाती है। अतः सम्भवतः यही कारण होगा कि संस्कृत में पूर्ण बाइबिल सन् १८२२ ई० में ही हो गई। राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दू बहुत अच्छी दशा में न थे और उनकी धार्मिक व सामाजिक अवस्था भी अच्छी न थी। सती की प्रथा जोरों पर थी। गंगा सागर ( समुद्र ) में अपने जीवित बच्चे को फेंक देना कुछ लोग अपना परम धर्म समझते थे। अस्तु क्या कहा जाय और क्या न कहा जाय कि उस समय हमारी क्या दशा थी।

काशी जो हिन्दुओं का एक प्रधान धार्मिक स्थान है। वह सन् १७९४ ई० में ही अंग्रेज़ों के अधिकार में आ गया था। इस स्थान में ईसाइयों की ओर से 'जय नारायण स्कूल' सन् १८१४ ई० में ही चालू हो गया था। कुछ हिन्दू अंग्रेजी शिक्षा की ओर झुक पड़े थे क्योंकि इसके द्वारा जीविका सुगमता के साथ चल सकती थी। कहीं-कहीं यह बात थी कि अनेक हिन्दू अपनी संस्कृत व हिन्दी भाषा को त्याग कर अरबी, फारसी या उर्दू को ही अपनाये हुये थे। मास्टर रामचन्द्र जी एक सुप्रसिद्ध हिन्दू विद्वान् ने सन् १८५२ ई० में ११ जुलाई को ईसाई मत ग्रहण कर लिया था। इसी प्रकार अनेक लिखे-पढ़े स्त्री-पुरुष ईसाई धर्म में प्रविष्ट हो गये थे।

मुसलमानों के हाथ से राज्य बहुत कुछ निकल गया और जो कुछ उनके हाथ में था वह भी अच्छी दशा में न था।

धार्मिक जोश कुछ लोगों में बहुत था किन्तु बहुतों में संशोधन का भाव था। अरबी व फारसी का चलन कमजोर पड़ रहा था। उर्दू की दशा उन्नति पर थी। कविता जोरों पर थी। कुरान शरीफ के दो अनुवाद उर्दू में पृथक-पृथक हो चुके थे। वैशाख सम्वत् १९२० वि० (अप्रैल सन् १८६३ ई०) में श्री स्वामी जी ने प्रचार कार्य का श्री गणेश किया था। यह वह समय था जब कि सन् १८५७ ई० की अग्नि को शान्त हुये बहुत दिन न बीते थे। अंग्रेजी सरकार चाहती थी कि उस नीति से काम लिया जाय जिससे कि भविष्य में कोई आपत्ति न आये। हिन्दू व मुसलमान अपने-अपने लिये चिन्तित थे। अस्तु मुसलमानों के विषय में अलग कुछ दिखलाया जायेगा। हाँ, हिन्दुओं के सम्बन्ध में कुछ कह देना अधिक आवश्यक है।

दक्षिण में मरहठे और पंजाब में सिक्ख उभरे थे किन्तु दोनों का पतन हो गया था। समस्त हिन्दू राज्यों ने अंग्रेजों का लोहा मान लिया था। धार्मिक दृष्टि से भी हिन्दुओं का हाल कुछ कम शोचनीय न था क्योंकि अनेक पढ़े-लिखे हिन्दू ईसाई या मुसलमान हो गये थे। खान-पान सम्बन्धी तनिक बात भी किसी हिन्दू को हिन्दू-क्षेत्र से निकाल कर ईसाई या मुसलमानों के यहाँ जाने पर मजबूर करती थी। निदान हिन्दुओं की कुरीतियों से ईसाई लोग विशेष रूप से लाभ उठा रहे थे और उनका काम-काज बहुत जोरों पर था। राजा राममोहन राय * ने ब्रह्म समाज की स्थापना सन् १८२८ ई० में की थी।

* (जन्म १७७४ ई०—मृत्यु १८३३ ई०)

उसके तथा प्रार्थना समाज के कारण कुछ धार्मिक जागृति पाश्चात्य ढंग पर केवल पढ़े-लिखे लोगों में थी। परन्तु नाना प्रकार के पाखंडों का ही जोर हिन्दुओं में अधिक था। मुसलमान अपने धर्म के लिये बहुत कुछ कर रहे थे। ईसाइयों के लिये कहा ही क्या जावे।

× ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में सब से पहले सन् १७७० ई० में काल पड़ा था। सन् १८५४ ई० तक भारत के किसी न किसी भाग में कुल १२ काल और चार महँगी हुई थीं। इन कारणों से ईसाइयों की चाँदी थी क्योंकि हिन्दुओं की ओर से कोई अनाथालय या प्रबन्ध न था। सन् १८६० ई० के बाद सन् १८८३ ई० के पहले कई काल भारत के किसी-न-किसी भाग में पड़े इनसे भी ईसाइयों ने बहुत लाभ उठाया था। अब और बहुत सी भारतीय भाषाओं में बाइबिल का अनुवाद हो गया था।

धार्मिक व सामाजिक दृष्टि से अवस्था यह थी कि वहाबियों की विचार धारा ने यहाँ जोर पकड़ा था। भारतीय मुसलमानों के आचार-विचार में भारतीयों अथवा हिन्दुओं के संसर्ग अथवा किसी कारण या अनेक कारणों से जो दोष आ गये थे उनको दूर करने के निमित्त कुछ लोग बड़े उत्सुक हुये

---

× 'माशियात हिन्द' ( उर्दू में ) उस्मानिया यूनीवर्सिटी द्वारा प्रकाशित। पृष्ठ ३२७-३३०। यह पुस्तक म० प्रमथ नाथ बनर्जी की अंग्रेज़ी पुस्तक Indian Economics के आधार पर म० इल्यास बरनी द्वारा अनुवादित है।

थे। पर यह भी स्पष्ट रहे कि उनके साहस की सीमा यहीं तक नहीं थी बल्कि भारत के सीमा प्रान्त तक पहुँची थी। क्यों कर ?

सन् १८३० ई० के आस-पास में सीमा प्रान्त में सिक्खों का ज़ोर था। अस्तु सिक्खों के मुकाबिले में युद्ध करने के लिये अनेक भारती वहाबी वहाँ पहुँचे थे। सिक्खों के साथ घोर युद्ध किया था। इसमें सन्देह नहीं कि रण-क्षेत्र में हारे और वहाँ अच्छे-अच्छे वहाबी काम आये थे किन्तु उन्होंने सिक्खों को भी भारी क्षति पहुँचाई थी।

सन् १८६३ ई० में अंग्रेज़ों और सीमा प्रान्तीय मुसलमान समुदायों के बीच में युद्ध छिड़ गया था, उस युद्ध में उन वहाबियों का हाथ था जो कि सिक्खों से हारने के बाद वहाँ बस गये थे और मुजाहदीन के नाम से प्रसिद्ध थे क्योंकि उन्होंने सिक्खों के मुकाबिले में जहाद अर्थात् धर्म युद्ध किया था। ऐसे अवसर पर भारत के भीतर के कुछ मुसलमानों ने सीमा प्रान्तीय मुसलमान वहाबी भाइयों की सहायता की थी। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों को कड़ी सज़ायें सरकार की ओर से मिलीं थीं। कुछ लोग काले पानी भेजे गये थे। ❀

---

❀ (१) "काला पानी या तवारीख अजीब" ( उर्दू में ) मौलाना मुहम्मद जाफ़र साहब थानेसरी द्वारा लिखित और सूफ़ी प्रिंटिङ्ग व पब्लिशिङ्ग कम्पनी पिण्डी बहाउद्दीन (पंजाब) से प्रकाशित। प्रकाशन का समय ग्रंथ में नहीं लिखा है।

(२) 'मज़ाहिब इस्लाम' ( उर्दू में ) मौलाना नजमुलग़नी खां

कौन नहीं जानता कि भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी ईस्वी की एक बड़ी भारी चीज़ सन् १८५७ ई० का समय है, जिसके पश्चात् भारत का वह नकशा बदल गया था जो कि पहले था। सन् १८५७ ई० से बहुत पहले ही राष्ट्रीय दृष्टि से मुसलमानों की अवस्था खराब हो गई थी। दिल्ली, लखनऊ और हैदराबाद यह तीन मुख्य स्थान ऐसे थे जो इनके पृथक-पृथक राज्य के केन्द्र थे किन्तु उस समय अंग्रेज़ों की बढ़ती हुई शक्ति के सम्मुख इनकी दशा बहुत प्रबल न थी। दिल्ली को लार्ड लेक ने सन् १८०३ ई० में ले लिया था। इसके बाद वहाँ का मुग़ल सम्राट् नाम मात्र सम्राट् रह गया था। उस समय साम्राज्य की नौका भँवर में आ गई थी।

लखनऊ के राज्य का अंत्येष्टि संस्कार सन् १८५७ ई० के पहले ही हो गया था। हैदराबाद का निपटारा अंग्रेज़ों के साथ जो कुछ होना था वह पहले ही हो चुका था

---

साहब रामपुरी द्वारा लिखित और नवलकिशोर प्रेस लखनऊ द्वारा सन् १९२४ ई० में प्रकाशित—पृष्ट ६११ (उर्दू में) इनके सिवा सर सय्यद के जीवन चरित्र 'हयात जावेद' मौलाना अलताफ़ हुसेन हाली साहब द्वारा लिखित व 'असबाब बग़ावत हिन्द' नामी उर्दू पुस्तक श्री सर सय्यद महोदय द्वारा लिखित से भी बहुत कुछ हाल मुसलमानों का जाना जा सकता है।

सीरत सय्यद अहमद शहीद—लेखक सय्यद अबुल हसन साहब नदवी (उर्दू में) सन् १९३९ ई० में लखनऊ से प्रकाशित हुई है।

इस कारण जब दिल्ली व लखनऊ को आपत्तियों का मुँह देखना पड़ा था हैदराबाद में किसी प्रकार की अशान्ति ही न थी।

अब ग़दर के बाद की बात सुनिये। हैदराबाद में उसी प्रकार का परिवर्तन हुआ। वहाँ ग़दर की गन्ध न थी। लखनऊ में आग भड़की किन्तु अन्त में शान्त ही हो गई। अब रहा दिल्ली का मामला। वहाँ ग़दर का ज़ोर अधिक था, इसी कारण दिल्ली को अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा था।।

नदी में दैवयोग से जब कोई नाव डूबती है तो क्या होता है? आस-पास की वस्तुओं पर भी पानी के उथल-पुथल का बुरा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार दिल्ली के राज्य की नौका डूबी और भी कुछ मुसलमानों को आपत्तियों का आखेट होना पड़ा था। निदान ग़दर के बाद मुसलमानों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई थी। मुसलमानों के बदले अंग्रेज़ों का साम्राज्य भारत में पक्का हो गया था। अंग्रेज़ों ने सन् १८५७ ई० की अग्नि का जिम्मेवार बहुत कुछ मुसलमानों को ही समझा था। उन पर कुछ कड़ाइयाँ भी हुईं। सय्यद अहमद खां साहब * अंग्रेज़ों को ख़ूब समझते थे। उनका मत था कि मुसलमानों का वास्तविक कल्याण इस बात में है कि वह अंग्रेज़ी राज्य व अंग्रेज़ी सभ्यता आदि के साथ सहयोग करें। अस्तु, उन्होंने ऐसे ढंग से काम किया कि अंग्रेज़ मुसलमानों से प्रसन्न हुये और

* जन्म काल सन् १८१७ ई०—मृत्यु १८९८ ई०

मुसलमान लोग अंग्रेजों से। और सीमा प्रान्त की (सन् १८६३ ई० की) परिस्थिति से वहाबी मुसलमानों के प्रति सरकार के जो विचार थे वह भी सर सय्यद की ही नीति से पलट गये थे।

श्रीस्वामीजी का देहान्त ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० अर्थात् कार्तिक कृष्ण १५ (अमावस्या) सम्वत् १९४० वि० अर्थात् दीपावली (दीपमाला) के दिन हुआ था। उनके प्रचार के समय (सन् १८६३ ई०) से उनकी मृत्यु के समय तक का काल उनका कार्य-काल रहा। इस काल में राजनीतिक, धार्मिक और शिक्षा विषयक समस्यायें निस्सन्देह समस्त भारत में बड़े जोरों पर थीं।

मेरा ख्याल है कि राजनीतिक समस्या को देखकर ही श्री स्वामी जी ने सत्यार्थ-प्रकाश के छठवें समुल्लास को लिखना अपने लिये आवश्यक समझा। कांग्रेस की जबरदस्त रट स्वराज्य है, सन् १८८५ ई० में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ था। श्री स्वामी जी के सत्यार्थ-प्रकाश के आठवें समुल्लास* में इससे कहीं पहले ही राज्य सम्बन्धी बातें मिलती हैं। श्री स्वामी जी महाराज ने कितना खेद प्रगट किया है और क्या कहा है? इसका उल्लेख उनके शब्दों में इस प्रकार जान लेना चाहिये :—

"अब अभाग्योदय से और आर्य्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहना किन्तु आर्य्यावर्त्त में भी आर्य्यों का अखंड,

* आठवें समुल्लास का अन्तिम भाग देखना चाहिये।

स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्ष-पात शून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय, और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुख-दायक नहीं है। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है।"

इसके सिवा ग्यारहवें समुल्लास के प्रारम्भिक पृष्ठों में श्री स्वामी जी ने यह भी लिखा—"सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य्य कुल में ही थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राज भ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं।"

सत्यार्थप्रकाश व आर्याभिविनय आदि के सिवा श्री स्वामी जी के पत्रों में भी राजनीति व स्वदेश प्रेम विषयक बातें हैं। यह पत्र अनेक लोगों के नाम हैं। इनके विषय में आगे चल कर कुछ लिखा जायगा।

सन् १८६३ ई० से पहले ही बम्बई, मद्रास और कलकत्ता को यूनीवर्सिटियाँ स्थापित हो गई थीं। अनेक सरकारी स्कूल

और कालिज क़ायम हो चुके थे। ईसाइयों की ओर से शिक्षा विषयक जो कार्य हो रहा था वह भी बड़े मारके का था। उस समय ईसाइयों द्वारा संचलित शिक्षालयों में बाइबिल पढ़ाई जाती थी या नहीं, रविवार को धार्मिक शिक्षा दी जाती थी या नहीं, मैं इन बातों के विषय में कुछ नहीं जान सका। परन्तु यह बात अवश्य हुई कि ईसाइयों के शिक्षालयों में पढ़ने वाले ईसाइयत के प्रभाव से वंचित न रहें।

हाँ, शिक्षा के विषय में विकट समस्या यह ज़रूर थी कि शिक्षा पाश्चात्य ढंग पर हो अथवा पूर्वीय शैली पर हो। माध्यम अंग्रेज़ी हो अथवा कोई देशीय भाषा। इस प्रकार की समस्याओं का ही फल था कि सरकार ने १८८१ ई० में एक शिक्षा कमीशन नियुक्त किया था। सन् १८८२ ई० में पंजाब यूनीवर्सिटी के स्थापित होने की नौबत आई थी।

सर सैयद साहब का मत था कि मुसलमानों की उन्नति इस ढंग से हो सकती है कि अपनी धार्मिक विद्याओं के साथ ही साथ पाश्चात्य शिक्षा को भी ग्रहण करें। इसी विचार से उन्होंने सन् १८६४ ई० में 'साइंटिफिक सूसाइटी (विज्ञान परिषद) नामी एक संस्था खोली थी। एक अखबार भी इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त निकाला था। सन् १८६७ ई० में उन्होंने एक वर्नाक्यूलर (अर्थात् उर्दू) यूनीवर्सिटी क़ायम किये जाने का विचार सरकार के सम्मुख रखा था। सन् १८६९ ई० में वह इङ्गलैण्ड गये थे और वहाँ से लौटने के पश्चात् २४ मई सन् १८७५ ई० (अर्थात् महारानी विक्टोरिया की वर्ष गांठ के दिन) को अलीगढ़ में एक पाठशाला खोली

थी जिसके भवन की नींव बाद को भारत के गवर्नर जनरल लार्ड लिटन ने ८ जनवरी सन् १८७७ ई० में डाली थी। यही संस्था बाद को शनैः शनैः मुस्लिम यूनीवर्सिटी के रूप में हो गई है।

ग़दर से पहले ईसाइयों तथा सरकार दोनों की ओर से अनेक संस्थायें ऐसी खुल गई थीं जिनमें अँग्रेज़ी की शिक्षा होती थी। हिन्दू की माला तो टूट ही चुकी थी अर्थात् उन्होंने मुसलमानों के समय में फ़ारसी को अपनाया था अतः वह अँग्रेज़ी के पठन पाठन पर टूट पड़े किन्तु मुसलमानों में अनेक लोगों ने अँग्रेज़ी पढ़ने को अच्छा और अनेक लोगों ने इस बात को अधर्म के समान समझा था। सन् १८३७ या ३८ ई० में सरकारी दफ्तरों से फ़ारसी बिदा कर दी गई थी। उसके स्थान पर दफ्तरों में उर्दू चल पड़ी थी। निदान उर्दू व अँग्रेज़ी का ज़ोर हो चला था।

अनेक मुसलमानों ने अँग्रेज़ी पढ़ना उचित न समझा था। इस कारण वह लोग हिन्दुओं से इस विषय में पीछे थे। सर सैयद महोदय की कोशिश यह थी कि मुसलमान पीछे न रहें। परन्तु उनके समकालीन मौलवी मुहम्मद कासिम* साहब व अन्य कुछ लोग तो सर सैयद के विचारों के बड़े विरोधी थे। इसी कारण मौलवी मुहम्मद कासिम साहब ने सन् १८६६ ई० में देव बन्द (ज़िला सहारनपुर) में एक स्कूल खोला। ताकि मुसलमानों की शिक्षा तथा उन्नति के लिये जो कुछ किया जाय वह स्वतन्त्र रूप से हो और पूर्वीय ढंग पर हो।

* (जन्म १८३२ ई०। मृत्यु १८८० ई०)

अब इस अवसर पर यह भी भली भांति स्पष्ट रहे कि देवबन्द-स्कूल के प्राण मौलाना मुहम्मद क़ासिम साहब वही थे जिन्होंने श्री स्वामी जी के साथ धार्मिक शास्त्रार्थ किया था। इस स्कूल के कार्य-कर्त्ताओं में अब मतभेद हो गया है किन्तु यह स्कूल अब भी अच्छी दशा में है।

निदान शिक्षा सम्बन्धी जो बातें श्री स्वामी जी के समय में थीं उन पर उन्होंने दृष्टि रखी और उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे व तीसरे समुल्लासों में विशेष रूप से इस पर लिखा। वेदाङ्ग प्रकाश की, १६ भागों में पठन पाठन के लिए, रचना हुई। इसके सिवा उनके पत्रों में भी अनेक बातें शिक्षा विषयक हैं। खेद है जो बातें श्री स्वामी जी ने शिक्षा के विषय में लिखी हैं उन पर बहुत ही कम ध्यान दिया गया है।

अब अन्त में यह कहना आवश्यक है कि जब लोग पाश्चात्य सभ्यता व शिक्षा आदि की ओर तेज़ी से बढ़ रहे थे, और उन पर इसी बात का प्रभाव डाला जा रहा था; ऐसे समय में श्री स्वामी जी ने भारतवासियों का ध्यान उनकी प्राचीन सभ्यता की ओर आकर्षित किया था। वेद जिसके सम्बन्ध में अनोखी कल्पनायें चल रही थीं उनका निराकरण कर उसकी महत्ता को बढ़ाया इत्यादि।

सन् १९३९ ई० में जब कि हैदराबाद राज्य में हिन्दुओं की ओर से निःशस्त्र प्रतिकार और आर्य समाजियों की ओर से सत्याग्रह ज़ोरों के साथ चल रहा था; उस समय में कुछ विरोधियों ने मुझसे इस प्रकार की बातें कीं कि हैदराबाद में हिन्दुओं को कभी कोई कष्ट न था। वहाँ आर्य समाज जब

से पहुँचा है और वहाँ समाज ने जब कुछ गड़-बड़ किया है तब कुछ ऐसी बातें हुई हैं जो कि हिन्दुओं के हक़ में ठीक नहीं हैं। इत्यादि

उक्त प्रकार की बातों को सुन कर कम से कम मेरा एक उत्तर यह हुआ करता था कि श्री स्वामी दयानन्द जी ने सन् १८६३ ई० से प्रचार का श्री गणेश किया था किन्तु मैं हैदराबाद राज्य द्वारा प्रकाशित सामग्री के आधार पर ही कहता हूँ कि हिन्दुओं के निमित्त दशहरा ( विजय दशमी ) के लिये ( यदि यह त्योहार मुहर्रम के साथ पड़े ) यह क़ानून बहुत पहले ही बना था :—

For three years consecutively, i.e., in 1269 H., 1270 H., and 1271 H., ( 1852 A.D., 1853 A.D., and 1854 A.D., ) The Dusserah coincided with Moharrum and there was an apprehension of breach of peace. Government therefore issued orders to the effect that Hindus should perform their religious ceremonies inside their houses and should not bring out their procession with music or other eclat."*

*"The Arya Samaj in Hyderabad" Published (1939 A.D. ) by order of His Exalted Highness the Nizam's Government. Page 39

भावार्थ—तीन वर्ष लगातार अर्थात् १८५२, १८५३ व १८५४ ई० में दशहरा व मुहर्रम एक साथ पड़े। शान्ति भङ्ग होने का भय था इस कारण निज़ाम सरकार की ओर से आज्ञा हुई कि हिन्दू लोग अपना त्योहार घरों के भीतर ही मनावें। बाजा अथवा अन्य ठाठ-बाठ के साथ अपना जलूस न निकालें।

जानना चाहिये कि उक्त विषय की बात भविष्य में हिन्दुओं के हक़ में और कड़ी हो गई है। मैंने इस अवसर पर इस बात को इस वजह से लिखा कि लोग सचेत रहें। विपक्षी लोग कभी-कभी आर्य समाज के माथे नाहक कोई बात मढ़ दिया करते हैं। अतः ध्यान रखना चाहिये कि कोई बात वास्तव में आर्य समाज के बाद हुई है अथवा पहले।

---

# द्वितीय अध्याय

## ग्रन्थ

### ( १ ) पुस्तक रूप में लिखित सामग्री

श्री स्वामी जी ने लगभग २० वर्षों तक काम किया। इनके कार्य काल में आने-जाने के वे साधन न थे जो कि आजकल उपलब्ध हैं तथापि वह बहुत से स्थानों में पहुँचे, बहुत से व्याख्यान दिये और बहुत से शास्त्रार्थ किये।

प्रत्येक मनुष्य उनके व्याख्यानों, शास्त्रार्थों अथवा उनकी सेवा में न पहुँच सकता था और यह बात भी स्पष्ट ही है कि प्रत्येक स्थान में वह स्वयं भी न पहुँच सकते थे। ऐसी अवस्था में यह बात अत्यन्त आवश्यक थी कि वह अपने विचारों को पुस्तक रूप में मुद्रित कराते ताकि बहुत से लोगों को लाभ होता। परन्तु कार्य-काल के आरम्भ में विरोधियों से निपटने और जिज्ञासुओं को सन्तोष देने का बोझा उनके सर पर इतना ज्यादा था कि वह लेख-बद्ध कार्य शुरू में बहुत ही कम कर सके थे।

उनके विरोधी कुछ कम न थे। उनके समय में पुस्तकालयों की भी बहुत कमी थी तथापि अनेक ग्रन्थों को उन्होंने खोजा और उनके आधार पर अनेक ग्रन्थों को लिखा। यह बात कुछ कम मारके की नहीं। फलतः उनकी बदौलत जो रचनायें हुई हैं उनका उल्लेख अगले पृष्ठों में किया जायगा परन्तु :—

## ध्यान रहे

१—सन् १८७३ ई० (संवत् १९३० वि०) तथा इसके पश्चात् श्री स्वामी जी ने हिन्दी की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया। इससे पहले वह संस्कृत का ही प्रयोग किया करते थे। अतः उक्त समय से पूर्व तथा सम्वत् १९३१ वि० तक की उनकी सारी कृतियाँ संस्कृत में ही हैं।

२—ग्रन्थ के रचे जाने का समय ग्रन्थ के नाम के नीचे लिख दिया गया है।

३—जिन रचनाओं का उल्लेख अगले पृष्ठों में किया गया है उनमें से—संध्या, पाखण्ड खण्डन और अद्वैतमत खण्डन और अष्टाध्यायी-भाष्य—मेरी दृष्टि में नहीं आये। इनकी बाबत मैंने जो कुछ लिखा है अन्य ग्रन्थों के सहारे लिखा है।

४—जिन ग्रन्थों की केवल पृष्ठ संख्या आगे बतलाई है और आकार उसके साथ नहीं बतलाया गया है उनका आकार लगभग ९½ × ६ इञ्च समझना चाहिये।

श्री स्वामी जी ने सम्वत् १९२० वि० (सन् १८६३ ई०) में सब से पहले सन्ध्या की पुस्तक आगरा में लिखी थी। वहीं

**संध्या**

के एक सज्जन म० रूपलाल जी ने डेढ़ सहस्र रुपया व्यय करके इसकी तीस सहस्र प्रतियाँ छपवाई थीं और यह मुफ्त बाँटी गई थी।

सम्वत् १९२३ वि० (सन् १८६६ ई०) में यह छोटी सी

**पाखण्ड-खण्डन**

पुस्तक भागवत के खण्डन में संस्कृत में लिखी गई। इसकी कई सहस्र प्रतियाँ आगरा में मुद्रित हुईं और आगरा के सिवा हरिद्वार के कुम्भ पर भी बांटी गईं थीं।

इस छोटी सी पुस्तक के प्रकाशन की आवश्यकता इस कारण अधिक हुई होगी कि उस समय में भागवत की कथा का ज़ोर बहुत ज़्यादा था। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि महाराजा ग्वालियर ने भी सम्वत् १९२१ वि० में भागवत की कथा का प्रबन्ध बड़ी धूम-धाम के साथ अपनी राजधानी में कराया था।

ऐसा भी पता चलता है कि इस छोटी सी पुस्तक का नाम कुछ दूसरा था।

(सन् १८७० ई०) में श्री स्वामी जी ने इसे काशी में प्रकाशित कराया था। इसने मायावाद के अद्वैतमत-खण्डन मानने वालों में बड़ी हल-चल पैदा कर सम्वत् १९२७ वि० दी थी यद्यपि यह छोटी सी ही थी।

इसमें वल्लभादि मत की पोल खोली गई है। कई बातें बड़े मारके की हैं। श्री स्वामी जी ने इसे वेद विरुद्ध मत खण्डन संस्कृत में लिखा था और भाषानुवाद सम्वत् १९३१ वि० पं० भीमसेन शर्मा जी ने किया था।

इस ग्रन्थ के अन्त में इसके रचे जाने की बाबत एक संस्कृत पद्य इन शब्दों में मिलता है :—

* शशिरामाङ्कचन्द्रेब्दे कार्तिकस्यासिते दले।
अमायां भौमवारे च ग्रन्थोऽयम्पूर्त्तिमागतः॥

---

* इसी प्रकार का केवल एक एक पद्य 'आर्य्योद्देश्य रत्न माला', 'भ्रमोच्छेदन' व 'सत्य धर्म विचार' और दो दो पद्य 'शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण' व 'गोकरुणा निधि' के अन्त में भी ग्रन्थ-रचना के विषय में

भावार्थ—सम्वत् १९३१ वि० कार्तिक कृष्णा अमावस्या मंगल (अर्थात् ९ नवम्बर सन् १८७४ ई०) को यह ग्रन्थ पूरा हुआ।

कुल ४३ पृष्ठों की पुस्तक है।

अनेक लोग बम्बई प्रान्त में ऐसे हैं कि श्री सहजानन्द जी को नारायण का अवतार और स्वामी नारायण पन्थ का आचार्य मानते हैं। प्रश्न व उत्तर के रूप में इसी पन्थ का खंडन है। श्री स्वामी जी द्वारा लिखित मूल संस्कृत सामग्री पृथक १५ पृष्ठों में है और हिन्दी में गुजराती से जो अनुवाद हुआ है वह लगभग १६ पृष्ठों में है।

शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण संवत् १९३१ वि०

मूल संस्कृत ग्रन्थ के अन्त से इसके रचे जाने का समय रविवार एकादशी कृष्ण पक्ष पौष सम्वत् १९३१ वि० अर्थात् ४ जनवरी सन् १८७५ ई० निकलता है।

यह सब से अधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ हिन्दी में है। सच तो यह है कि जो किसान चाहता है कि उसकी खेती अच्छी हो, वह पहले खेत को ठीक करता है, उसमें से समस्त घास-फूस व ख़राब चीज़ें निकाल बाहर कर देता है। फलतः श्री स्वामी जी चाहते थे कि लोगों पर वैदिक मत की छाप लगे। इसी कारण उन्होंने यह आवश्यक उद्योग किया कि वेद विरुद्ध जो बातें लोगों के हृदयों

सत्यार्थ प्रकाश सम्वत् १९३२ वि०

---

अवश्य मिलते हैं। इनके सिवा 'वेदाङ्ग प्रकाश' के कुछ खण्डों के अन्त में भी उक्त प्रकार के रचना-विषयक पद्य हैं।

में घर किये हुये हैं अथवा ज़ोरों के साथ जड़ पकड़ रहो हैं उनको पहले दूर किया जाय। उसके बाद लोग वेद मत के अनुगामी हो सकेंगे।

जिस समय की रचना सत्यार्थ प्रकाश है उसी समय की खण्डनात्मक रचनायें—'प्रतिमा पूजा विचार' और 'स्वामी नारायण मत खण्डन'—हैं। किन्तु यह रचनायें काफ़ी न थीं। तेज़ और अधिक खण्डन की आवश्यकता थी। नहरनी से पहाड़ नहीं कटता। अस्तु, सत्यार्थ प्रकाश की रचना परम आवश्यक थी। परन्तु जो लोग इस ग्रन्थ को केवल खंडन अथवा अधिकांश खण्डन का ग्रन्थ समझते हैं उनको जान लेना चाहिये कि इस ग्रन्थ के चौदह समुल्लासों में से केवल चार समुल्लास खण्डन के हैं और बाकी दस मण्डन वाले ही हैं। यह ग्रन्थ जब प्रथम बार सन १८७५ ई० में छपा था तो केवल दो ही समुल्लास खंडन के थे। सन् १८८४ ई० में जो संशोधित संस्करण* निकला है उसमें ईसाई और मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाले समुल्लास बढ़ाये गये हैं। ताकि लोग इन दोनों धर्मों की असत्य बातों से भी कुछ परिचित हो जांय जो कि भारत में ज़ोरों के साथ अपना सिक्का जमा रहे थे। ×

* इस संस्करण की भूमिका से स्पष्ट है कि यह संस्करण भाद्र पद शुक्ल सम्वत् १९३९ विक्रमी अर्थात् सितम्बर सन् १८८२ ई० में तैयार हो गया था। अब इसी संस्करण के अनुसार वाले सत्यार्थ-प्रकाश प्रचलित हैं और इन्हीं की धूम है। यह ७२० पृष्ठों का है। प्रथम संस्करण ४० से कुछ अधिक पृष्ठों का था।

× 'सत्यार्थ प्रकाश की व्यापकता' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक

इसमें ईश्वर प्रार्थना व स्तुति सम्बन्धी १०८ वेद मन्त्र भाषा की व्याख्या सहित दो प्रकाश ( भाग ) हैं। लछ ७६ पृष्ठों की पुस्तक है। कम-से-कम इसके दोनों प्रकाशों, सत्यार्थ-प्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेद भाष्य भूमिका के अन्त में और यजुर्वेद व ऋग्वेद भाष्यों के अनेक स्थलों में श्री स्वामी जी को पूज्य श्री स्वामी विरजानन्द जी का शिष्य बड़े गौरव के साथ लिखा हुआ अवश्य मिलता है।

आर्याभिविनय
संवत् १९३२ वि०

इसमें सोलह संस्कारों का उल्लेख है। यह २५६ पृष्ठों की पुस्तक हिन्दी व संस्कृत में है। इसके अनुसार यदि संस्कार हों तो जाति की दशा बहुत सुधर सकती है।

संस्कार विधि
सम्वत् १९३२ वि०

इसकी भूमिका से स्पष्ट है कि श्री स्वामी जी ने शनिवार ३० कृष्ण कार्तिक सम्वत् १९३२ वि० (अर्थात् ३० अक्तूबर सन् १८७५ ई० ) को इसे प्रारम्भ किया था। पहले संस्करण का संशोधन करके इसे वर्तमान रूप में लाने का विचार सम्वत् १९४० वि० आषाढ़ बदी १३ रविवार ( अर्थात् १ जुलाई सन् १८८३ ई० ) को किया था। वह संशोधित संस्करण सम्वत् १९४१ वि० में प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

इस छोटी-सी पुस्तक में नवीन वेदान्तियों की बातों का खण्डन है अर्थात् जो लोग यह मानते हैं कि जीव ब्रह्म एक है, जगत् मिथ्या है। इत्यादि।

वेदान्त-ध्वान्त निवारण
सम्वत् १९३३ वि०

---

मेरी लिखी हुई है। इसके द्वारा कुछ और बातें भी पाठक ज सकते हैं।

यह पुस्तक पहली बार मुम्बापुरी ( बम्बई ) में छपी थी। उसमें हिन्दी भाषा बहुत अशुद्ध हो गई थी। दूसरी आवृत्ति में वह सामग्री अशुद्ध हुई जो कि संस्कृत में थी। इसकी तीसरी आवृत्ति सम्वत् १९४५ वि० फाल्गुन शुक्लपक्ष ( मार्च सन् १८८९ ई० ) वाली मेरी दृष्टि में आई है। यह ७$\frac{1}{2}$ × ४$\frac{1}{2}$ इंच के २८ पृष्ठों की है। इसकी अधिकांश सामग्री हिन्दी में है।

इसमें वेदों की महत्ता दिखाई गई है। पाश्चात्य विद्वानों की ओर से वेदों पर जो आक्षेप या कटाक्ष हैं उनका इसमें समाधान है। यह ग्रंथ हिन्दी व संस्कृत दोनों में ४६२ पृष्ठों में है किन्तु इसकी संस्कृत बड़ी सरल है और श्री स्वामी जी की अपूर्व विद्वता का परिचय देती है। यह भी ज्ञात रहे कि इस अपूर्व ग्रंथ के अन्त में भाष्य विषयक कुछ आवश्यक बातें हैं और यह लिखा है :—

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका सम्वत् १९३३ वि०

"यह भूमिका जो वेदों के प्रयोजन अर्थात् वेद किस लिये और किसने बनाये, उनमें क्या-क्या विषय हैं इत्यादि बातों को अच्छी प्रकार प्राप्त कराने वाली है।"

इस ग्रंथ का श्री गणेश भादों सुदी प्रतिपदा सम्वत् १९३३ वि० ( २० अगस्त १८७६ ई० ) रविवार को अयोध्या में हुआ था। इसकी छपाई इसी सम्वत् के अन्तिम ( सन् १८७७ ई० ) के आरम्भ काल में काशी के ई० जे० लाज़रस एण्ड को मेडीकल हाल प्रेस में शुरू हुई थी। पूरा ग्रन्थ काशी में ही छपा था।

आर्योद्देश्य रत्नमाला सम्वत् १९३४ वि०

हमारे कर्तव्य व वैदिक सिद्धान्त सम्बन्धी ईश्वर, धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य, आदि की परिभाषा हिन्दी में बतलाई गई है। यह केवल १० पृष्ठों की ही छोटी सी पुस्तक है किन्तु बड़े मारके की चीज़ है।

पुस्तक के अन्त में ग्रन्थ-रचना विषयक संस्कृत पद्य में सम्वत् १९३४ वि० श्रावण शुक्ल पक्ष सप्तमी बुधवार लिखा हुआ है। इस तिथि के अनुसार सन् १८७७ ई० को १५ अगस्त ठहरता है।

वेदों का भाष्य

श्रीस्वामी जी के हृदय में वेदों के लिए जो स्थान था उसके बतलाने की आवश्यकता नहीं। ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ से पता चलता है कि उन्होंने भौमवार मार्ग शुक्ल ६ सम्बत् १९३४ वि० ( ११ दिसम्बर सन् १८७७ ई० ) से इस भाष्य का कार्य आरम्भ हुआ था। इसमें कुल मण्डल १०, सूक्त १०२८ और मंत्र १०५८९ हैं। इनमें से मण्डल ७ के सूक्त ६१ के मंत्र २ तक अर्थात् कुल ५६२९ मन्त्रों का ही भाष्य श्री स्वामी जी महाराज अपने जीवन में कर सके थे।

यजुर्वेद के भाष्य का श्री गणेश पौष सुदी १३ सम्वत् १९३४ वि० ( १७ जनवरी सन् १८७८ ई० ) गुरुवार से हुआ था। इस भाष्य के प्रारम्भ में इस वेद की बाबत यह लिखा है :—

"ईश्वर ने ऋग्वेद में गुण और गुणी के विज्ञान के प्रकाश द्वारा सब पदार्थ प्रसिद्ध किये हैं। उन मनुष्यों को पदार्थों से जिस जिस प्रकार यथायोग्य उपकार लेने के लिए क्रिया करनी

चाहिये तथा उस क्रिया के जो जो अँग व साधन हैं सो सो यजुर्वेद में प्रकाशित किये हैं क्योंकि जब तक क्रिया करने का दृढ़ ज्ञान न हों तब तक उस ज्ञान से श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता और विज्ञान होने के ये हेतु हैं कि जो क्रिया प्रकाश अविद्या की निवृत्ति, अधर्म में अप्रवृत्ति तथा धर्म और पुरुषार्थ का संयोग करना है। जो कर्मकाण्ड है सो विज्ञान का निमित्त है जो विज्ञान काण्ड है सो क्रिया से फल देने वाला होता है—कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो मन, प्राण, वायु, इन्द्रिय और शरीर के चलाये बिना एक क्षण भर भी रह सके क्योंकि जीव अल्पज्ञ एक देशवर्ती चेतन है इसलिये जो ईश्वर ने ऋग्वेद के मन्त्रों से सब पदार्थों के गुणगुणी का ज्ञान और यजुर्वेद के मन्त्रों से सब क्रिया करनी प्रसिद्ध की है क्योंकि ( ऋक् ) और ( यजुः ) इन शब्दों का अर्थ भी यही है कि जिससे मनुष्य लोग ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग सब शिल्प क्रिया सहित विद्याओं की सिद्ध श्रेष्ट विद्या श्रेष्ट गुण वा विद्या का दान यथायोग्य उक्त विद्या के व्यवहार से सर्वोपकार के अनुकूल द्रव्यादि पदार्थों का खर्च करें इसलिये इसका नाम यजुर्वेद है।"

इस वेद में कुल अध्याय ४० और कुल मन्त्र १९७५ हैं। श्री स्वामी जी के एक पत्र* से यह मालूम होता है कि भाद्र सुदी ८ सम्वत् १९३७ वि० ( १२ सितम्बर १८८० ई० ) रविवार को यजुर्वेद के सातवें अध्याय के मन्त्रों का भाष्य उस

* 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग ४, पृष्ठ ६।

ग्रन्थ 972

समय न किया जा रहा था। शनिवार अगहन सुदी १ सम्वत् १९३९ वि० ( २६ नवम्बर सन् १८८२ ई० ) को यह भाष्य समाप्त हुआ था। उस समय श्री स्वामी जी उदयपुर में थे।

ऋग्वेद के भाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्र भाष्य का आरम्भ किया जाता है—ऐसे शब्द यजुर्वेद भाष्य के आरम्भ में हैं। इनसे कुछ लोगों ने यह समझा है कि श्री स्वामी जी महाराज ने ऋग्वेद भाष्य समाप्त किया फिर यजुर्वेद में हाथ लगाया। किन्तु उक्त शब्दों से ऐसा भाव निकालना मेरे विचार से ठीक नहीं क्योंकि ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ किये जाने का जो समय है उसके एक मास व एक सप्ताह बाद ही यजुर्वेद भाष्य के आरम्भ किये जाने का पता चलता है। इतने थोड़े काल में ऋग्वेद भाष्य का पूर्ण होना सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है क्योंकि ऋग्वेद जितना बड़ा है उसके बतलाने की आवश्यकता नहीं और श्री स्वामी जी के पास जो कार्य रहता था वह भी कुछ कम न था। फलतः उक्त शब्दों का भाव मेरे विचार से यह है कि ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्र भाष्य का आरम्भ किया जाता है।

दोनों वेदों में भाष्यों की छपाई एक ही समय में बम्बई में निर्णय सागर नामी प्रेस में सम्वत् १९३५ वि० में आरम्भ हुई थी। एक एक खंड केवल २४ पृष्ठों का छपता था और प्रति मास ग्राहकों के पास पहुँचता था। वार्षिक मूल्य चार रुपये और प्रत्येक खंड का दाम डाक महसूल सहित ।=)॥ भारत के भीतर भेजने के लिये रक्खा गया था। कुल पृष्ठ २८८ ( लगभग

६½×६ इञ्च के आकार के ) प्रत्येक ग्राहक को प्रति वर्ष मिलते थे। अब यदि उस समय की छपाई व काग़ज़ आदि के भाव पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि मूल्य अधिक न था। वास्तविक बात यह थी कि कुछ लोगों का धन उपकारार्थ भी इस कार्य में लगता था। अतः इस बात का पता भाष्य के अनेक खंडों से चलता है जो कि पृथक्-पृथक् निकले थे। इनके सिवा श्री स्वामी जी के पत्रों से भी उक्त बात का पता चलता है।

माघ शुक्ल २ सम्वत् १९३६ वि० ( १२ फरवरी सन् १८८० ई० ) वृहस्पति को जब वैदिक यन्त्रालय काशी में स्थापित हुआ तो दोनों के भाष्य उसमें छपने लगे।* और इसमें सन्देह नहीं कि श्री स्वामी जी ने ऋग् व यजु दोनों के भाष्यों के लिये भर सक यत्न किया तथापि दोनों भाष्यों का प्रकाशन उनके जीवन काल में समाप्त न हो सका था। अस्तु यजुर्वेद भाष्य की छपाई शनिवार वैशाख सुदी ११ सम्वत् १९४६ वि० ( ११ मई सन् १८८९ ई० ) को पूर्ण हुई थी और ऋग्वेद भाष्य की छपाई आषाढ़ कृष्ण ५ सम्वत् १९५६ वि० (२८ जून सन् १८९९ ई०) बुधवार को समाप्त हुई थी। ऐसी बात दोनों भाष्यों के अन्तिम खंडों से मालूम होती है। इनमें से ऋग्वेद भाष्य ८५७३ और यजुर्वेद भाष्य ३६०० पृष्ठों का है।

---

* सम्वत १९३७ वि० में वेद-भाष्यों के अंक काशी से निकले हैं। किन्तु जब यन्त्रालय सन् १८८१ ई० ( संवत् १९३८ वि० ) में प्रयाग गया तो कुछ अंक वहाँ से निकले। और जब यन्त्रालय सन् १८९१ ई० अजमेर पहुँचा तो बाकी ग्रंथ वहाँ छपा।

वेद भाष्यों में पहिले मूल मन्त्र है। फिर यह बातें प्रत्येक मंत्र के सम्बन्ध में हैं :—

(१) पाद पाठ

(२) पदार्थ भाष्य ( संस्कृत में )

(३) अन्वय "

(४) भावार्थ "

(५) अन्वयानुसार अर्थ ( हिन्दी में )

(६) भावार्थ "

श्री स्वामी जी द्वारा संस्कृत भाष्य रचा गया था और हिन्दी में जो कुछ हुआ वह उनकी देख-रेख में अन्य व्यक्तियों द्वारा हुआ। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हिन्दी में वेदों का भाष्य सब से पहले श्री स्वामी जी के ही उद्योग से हुआ है।

श्री स्वामी जी का वेद भाष्य कैसा है। इस बात का परिचय वास्तव में उनके भाष्य से ही मिल सकता है। परन्तु वेद भाष्य को प्रत्येक व्यक्ति मोल ले सके अथवा प्रत्येक जगह सुगमता के साथ देख सके—यह दोनों बातें कठिन हैं। और इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक यन्त्रालय अजमेर से ऋग्वेद के प्रथम ६ मन्त्रों का भाष्य नमूने के रूप में केवल एक आने में मिलता है किन्तु बहुत ही कम लोग इस बात से परिचित हैं। फलतः ऋग् व यजुर्वेद के एक एक मंत्र का नमूना यहाँ दिया जा रहा है:—

**वेद भाष्य का नमूना**

ऋग्वेद मं० १, अध्याय १ सूक्त १ मं० ७ का ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार भाष्य किया है :—

तद्ब्रह्म कथमुपास्यं प्राप्तव्यमित्युपदिश्यते ॥

उक्त परमेश्वर कैसे उपासना करके प्राप्त होने के योग्य है इसका विधान अगले मंत्र में किया है ॥

**उप त्वाग्ने दिवेदिवेदोषावस्तर्धिया वयम् ॥ नमो भरन्त एमसि ॥७॥**

उप । त्वा । अग्ने । दिवेऽदिवे । दोषाऽवस्तः । धिया । वयम् । नमः । भरन्तः । आ । इमसि ॥७॥

**पदार्थः**—( उप ) सामीप्ये ( त्वा ) त्वां ( अग्ने ) सर्वोपास्येश्वर ( दिवेऽदिवे ) विज्ञानस्य प्रकाशाय प्रकाशाय ( दोषावस्तः ) अहर्निशम् । दोषेति रात्रिनामसु पठितम् । निघं० १।७ । रात्रः प्रसंगाद्वस्त इति दिननामात्र ग्राह्यम् (धिया) प्रज्ञया कर्मणा वा ( वयं ) उपासकाः ( नमः ) नम्रीभावे ( भरन्तः ) धारयन्तः ( आ ) समन्तात् ( इमसि ) प्राप्नुमः ॥७॥

**अन्वयः**—हे अग्ने वयं धिया दिवेदिवे दोषावस्तस्त्वा त्वां भरन्तो नमस्कुर्वन्तश्चोपैमसि प्राप्नुयः ॥

**भावार्थः**—हे सर्वद्रष्टः सर्वव्यापिन्नुपासनार्हं वयं सर्वकर्मानुष्ठानेषु प्रतिक्षणं त्वां यतो नैव विस्मरामः । तस्मादस्माकमधर्ममनुष्ठातुमिच्छा कदाचिन्नैव भवति । कुतः सर्वज्ञः सर्वसाक्षी भवान्सर्वाण्यस्मत्कार्य्याणि सर्वथा पश्यतीति ज्ञानात् ॥७॥

पदार्थान्वयभाषाः—( अग्ने ) हे सब के उपासना करने योग्य परमेश्वर हम लोग ( दिवेदिवे ) अनेक प्रकार के विज्ञान होने के लिए ( धिया ) अपनी बुद्धि और कर्मों से आपकी ( भरन्तः ) उपासना को धारण और ( दोषावस्तः ) रात्रि-दिन

में निरन्तर ( नमः ) नमस्कार आदि करते हुये ( उपैमसि ) आपके शरण को प्राप्त होते हैं ॥७॥

भावार्थः—हे सबको देखने और सब में व्याप्त होने वाले उपासना के योग्य परमेश्वर हम लोग सब कामों के करने में एक क्षण भी आपको नहीं भूलते इसी से हम लोगों को अधर्म करने में कभी इच्छा भी नहीं होती क्योंकि जो सर्वज्ञ सबका साक्षी परमेश्वर है वह हमारे सब कामों को देखता है इस निश्चय से ॥७॥

यजुर्वेद प्रथम अध्याय, मंत्र ५ का भाष्य श्री स्वामी जी महाराज ने इस प्रकार किया है :—

अग्ने व्रतपत इत्यस्य ऋषिः स एव । अग्निर्देवता । आर्चीत्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

किंच तद्वाचो व्रतमित्युपदिश्यते ।

उक्त वाणी का व्रत क्या है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ।

**अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥५॥**

अग्ने । व्रतपत इति व्रतऽपते । व्रतं । चरिष्यामि । तत् । शकेयं । तत् । मे । राध्यताम् । इदं । अहं । अनृतात् । सत्यं । उप । एमि ॥५॥

**पदार्थ**—( अग्ने ) हे सत्योपदेशकेश्वर । ( व्रतपते ) व्रतानां सत्यभाषणादीनां पतिः पालकस्तत्संबुद्धौ । ( व्रतं ) सत्यभाषणं सत्यकरणं सत्यमानं च । ( चरिष्यामि ) अनुष्ठास्यामि । ( तत् ) व्रतमनुष्ठातुं । ( शकेयं ) यथा समर्थो भवेयम् । ( तत् )

तस्यानुष्ठानं पूर्त्तिश्च । ( मे ) मम । ( राध्यतां ) संसेध्यतां । ( इदं ) प्रत्यक्षमाचरितुं सत्यं व्रतं । ( अहं ) धर्मादिपदार्थचतुष्टयं चिकीर्षुर्मनुष्यः । ( अनृतात् ) न विद्यते ऋतं यथार्थमाचरणं यस्मिन् तस्मान्मिथ्याभाषणान् मिथ्याकरणान्मिथ्यामानात्पृथग्भूत्वा । ( सत्यं ) यद्वेदविद्यया प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः सृष्टिक्रमेण विदुषां संगेन सुविचारेणात्मशुद्धया वा निर्भ्रमं सर्वहितं तत्त्वनिष्ठं सत्प्रभवं सम्यक् परीक्ष्य निश्चीयते तत्। सत्यं कस्मात् सत्सु तायते सत्प्रभवं भवतीति वा । निरु० ३ । १३ । ( उप ) क्रियार्थे । ( एमि ) ज्ञातुं प्राप्तुमनुष्ठातुं प्राप्नोमि ॥ अयं मन्त्रः । श० १ । १ । १ । १—६ । व्याख्यातः ॥५॥

**अन्वयः**—हे व्रतपते अग्ने सत्यधर्मोपदेशकेश्वर अहं यदिदमनृतात्पृथग्वर्त्तमानं सत्यं व्रतमाचरिष्यामि तन्मे मम भवता स्वकृपया राध्यतां संसेध्यतां यदुपैमि प्राप्नोमि यच्चानुष्ठातुं शक्नेयं तदपि सर्वं राध्यतां संसेध्यताम् ॥५॥

**भावार्थः**—ईश्वरेण सर्वमनुष्यैरनुष्ठेयोऽयं धर्म उपदिश्यते। यो न्यायः पक्षपातरहितः सुपरीक्षितः सत्यलक्षणान्वितः सर्वहिताय वर्त्तमान ऐहिकपारमार्थिकसुखहेतुरस्ति स एव सर्वमनुष्यैः सदाचरणीयः । यश्चैतस्माद्विरुद्धो ह्यधर्मः स नैव केनापि कदाचिदनुष्ठेयः । एवं हि सर्वैः प्रतिज्ञा कार्य्या । हे परमेश्वर वयं वेदेषु भवदुपदिष्टमिमं सत्यधर्ममाचरितुमिच्छामः । येयमस्माकमिच्छा सा भवत्कृपया सम्यक् सिध्येत् । यतो वयमर्थकाममोक्षफलानि प्राप्तुं शक्नुयाम । यथा चाधर्मं सर्वथा त्यक्त्वाऽनर्थकुकामबन्धदुःखफलानि पापानि त्यक्तुं त्याजयितुं च समर्था भवेम । यथा भवान् सत्यव्रतपालकत्वाद्व्रतपतिर्वर्त्तते

तथैव वयमपि भवत्कृपया स्वपुरुषार्थेन यथाशक्ति सत्यव्रत-पालका भवेम। एवं सदैव धर्मं चिकीर्षवः सत्क्रियावन्तो भूत्वा सर्वसुखोपगताः सर्वप्राणिनां सुखकारकाश्च भवेमेति सर्वैः सदैवेष्टितव्यम्। शतपथब्राह्मणेऽस्य मन्त्रस्य व्याख्यायामुक्तं मनुष्याणां द्विविधमेवाचरणं सत्यमनृतं च तत्र ये वाङ्मनः-शरीरैः सत्यमेवाचरन्ति ते देवाः। ये चैवानृतमाचरन्ति ते मनुष्या अथार्दसुरराक्षसाः सन्तीति वेद्यम्॥ ५॥

**पदार्थः**—हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और। (अग्ने) सत्य उपदेश करनेवाले परमेश्वर मैं। (अनृतात्) जो झूँठ से अलग। (सत्यं) वेदविद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, तत्त्व अर्थात् सिद्धांत के प्रकाश करानेहारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया। (व्रतं) सत्य बोलना सत्य मानना और सत्य करना है उसका। (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता हूँ। (मे) मेरे। (तत्) उस सत्यव्रत को आप। (राध्यतां) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिये जिससे कि। (अहं) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को। (शकेयं) समर्थ होऊं। और मैं (इदं) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम। (चरिष्यामि) करूँगा॥ ५॥

**भावार्थः**—परमेश्वर ने सब मनुष्यों को नियम से सेवन करने योग्य धर्म का उपदेश किया है जो कि न्याययुक्त परीक्षा किया हुआ सत्य लक्षणों से प्रसिद्ध और सब का हितकारी

तथा इस लोक अर्थात् संसारी और परलोक अर्थात् मोक्षसुख का हेतु है यही सब को आचरण करने योग्य है और उससे विरुद्ध जो कि अधर्म कहाता है वह किसी को ग्रहण करने योग्य कभी नहीं हो सकता क्योंकि सर्वत्र उसी का त्याग करना है इसी प्रकार हमको भी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हे परमेश्वर हम लोग वेदों में आपके प्रकाशित किये सत्य धर्म का ही ग्रहण करें तथा हे परमात्मन् आप हम लोगों पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग उक्त सत्य धर्म का पालन करके अर्थ काम और मोक्षरूप फलों को सुगमता से प्राप्त हो सकें। जैसे सत्यव्रत के पालने से आप व्रतपति हैं वैसे ही हम लोग भी आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से यथाशक्ति सत्यव्रत के पालने वाले हों तथा धर्म करने की इच्छा से अपने सत्कर्म के द्वारा सब सुखों को प्राप्त होकर सब प्राणियों को सुख पहुँचानेवाले हों ऐसी इच्छा सब मनुष्यों को करनी चाहिये। शतपथ ब्राह्मण के बीच इस मंत्र की व्याख्या में कहा है कि मनुष्यों का आचरण दो प्रकार का होता है एक सत्य और दूसरा झूँठ का अर्थात् जो पुरुष वाणी मन और शरीर से सत्य का आचरण करते हैं वे देव कहाते और जो झूँठ का आचरण करनेवाले हैं वे असुर राक्षस आदि नामों के अधिकारी होते हैं ॥ ५ ॥

( १ ) वेद भाष्यों में जो संकेत दिये गये हैं उनकी बाबत 'ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका' के अन्तिम पृष्ठों में भली भांति ध्यान रहे बतला दिया गया है। अतः भाष्य देखने वाले प्रेमियों को चाहिये कि उक्त ग्रंथ को पहले पढ़ें और फिर भाष्य को देखें तो विशेष रूप से लाभ होगा।

(२) यदि श्री स्वामी जी को केवल वेद भाष्य का ही कार्य करना होता तो वह चारों वेदों का भाष्य उतने ही दिनों में कर डालते जितने दिनों तक वे जीवित रहे। परन्तु व्याख्यान व शास्त्रार्थ आदि भी एक कारण थे कि वे इस कार्य को पूरा न कर सके थे।

(३) जिस समय उन्होंने वेद भाष्य के कार्य में हाथ लगाया उसके बाद भी कुछ अन्य ग्रंथों की ओर से वह उदासीन न थे। उनके कर कमलों अथवा उनके संरक्षण में निम्न लिखित ग्रंथ तैयार हुये थे। अतः उनका नाम व रचना का समय नीचे दिया जाता है :—

| नाम | रचना का संवत् वि० |
|---|---|
| १—आर्योद्देश्य रत्न माला | १९३४ |
| २—पंचयज्ञ महाविधि | १९३५ |
| ३—अष्टाध्यायी भाष्य | १९३५ (में आरंभ) |
| ४—वेदाङ्ग प्रकाश (१६ खण्ड) | १९३६-३९ |
| ५—भ्रमोच्छेदन | १९३७ |
| ६—सत्य धर्म विचार | १९३७ |
| ७—गो करुणा निधि | १९३७ |
| ८—सत्यार्थ प्रकाश (द्वितीय संस्करण) | १९३९ |
| ९—संस्कार विधि " " | १९४० |

निदान एक कारण यह ग्रंथ भी थे कि समस्त वेदों का भाष्य न हो सका था।

(४) वेद भाष्यों के पृथक-पृथक खण्डों पर जो सूचनायें व विज्ञापनादि छपे हैं उनसे भी कुछ बातों पर प्रकाश पड़ता है।

काशी से वैदिक यन्त्रालय का प्रयाग आना, मुन्शी इन्द्रमणि जी का मुकदमा आदि बातें।

श्री स्वामी जी के वेद भाष्य पर कलकत्ता संस्कृत कालिज के स्थानापन्न प्रिन्सिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न जी की ओर से जो शंकायें हुई हैं, उन्हीं का उत्तर इस ४६ पृष्ठों की हिन्दी पुस्तक में है। इसमें यह दिखलाया गया है कि वेदों में अनेक परमेश्वर की पूजा नहीं है। वास्तव में अग्नि आदि नाम ईश्वर के ही हैं। शास्त्र और युक्ति से इसमें यह भली भांति सिद्ध किया गया है।

भ्रान्ति निवारण
सम्वत् १९३४ वि०

इसमें पाँच महायज्ञ—ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ—का विधान संस्कृत मंत्रों व भाषार्थ सहित ४० पृष्ठों में है।

पंच महायज्ञ विधि
सम्वत् १९३५ वि०

वेद का अर्थ जानने के लिये महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी भी एक मुख्य चीज है। इसकी उत्तमता का पता वेदाङ्ग प्रकाश के अधिकांश भागों द्वारा ही चला है और इसी के द्वारा ही उसके पढ़ने की रुचि बढ़ती है। इसके अधिकांश भागों में संस्कृत व हिन्दी दोनों हैं। इस अपूर्व ग्रन्थ की तैयारी में दूसरे पण्डितों का भी बहुत ज्यादा हाथ रहा है और उनकी बदौलत कहीं कहीं अशुद्धियाँ हो गई है।

वेदाङ्ग प्रकाश
सम्वत् १९३६ वि०
—१९३९ वि०

ज्ञात रहे कि श्री स्वामी जी के विचार से जिस ढंग की शिक्षा होनी चाहिये उसके लिये वेदाङ्ग प्रकाश एक परम आवश्यक ग्रन्थ है और वैदिक संस्कृत के निमित्त हिन्दी में एक प्रधान साधन है। पूरा ग्रन्थ लगभग १३३६ पृष्ठों का है। इसमें

कुल १६ अङ्ग है किन्तु 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' और 'व्यवहार भानु' को इससे पृथक समझ कर कहीं कहीं इसके अङ्गों की संख्या केवल १४ ही लिखी हुई देखने में आती है।

इसके अन्तर्गत जो ग्रन्थ है उनके नाम क्रमानुसार पृष्ठ संख्या सहित नीचे दिये जा रहे हैं :—

| नाम | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| १—वर्णोच्चारण शिक्षा | २४ |
| २—संस्कृत वाक्य प्रबोध | ५२ |
| ३—व्यवहार भानु | ४४ |
| ४—सन्धि विषय | १०४ |
| ५—नामिक | ६६ |
| ६—कारकीय | ४६ |
| ७—सामासिक | ६३ |
| ८—स्त्रैणताद्धित | १७८ |
| ९—अव्ययार्थ | २८ |
| १०—आख्यातिक | ३९२ |
| ११—सौवर | २४ |
| १२—पारभाषिक | ५६ |
| १३—धातुपाठ | ७२ |
| १४—गणपाठ | ५६ |
| १५—उणादिकोश | १३८ |
| १६—निघन्टु | ६४ |

श्री स्वामी जी ने इनके पठन पाठन पर जोर दिया है। इन सभों के रचे जाने और प्रकाशन का समय भिन्न भिन्न

है। इनकी बाबत थोड़ा-बहुत आगे लिखा जायगा।

अकारादि वर्णों के स्थान प्रयत्नादि विषय में महर्षि पाणिनि ने जो कुछ कहा है उसी को मूल सहित हिन्दी भाषा में भली भाँति इसमें लिखा गया है। पठन-पाठन की यह पहली पुस्तक है। इससे वर्णों का उच्चारण यथायोग्य हो सकता है।

वर्णोच्चारण शिक्षा
सम्वत् १९३६ वि०

संस्कृत लिखने व बोलने के निमित्त संस्कृत में हिन्दी भाषा अनुवाद सहित बड़ी अच्छी पुस्तक उपदेश-युक्त है। इसके ऊपरी पृष्ठ पर यह शब्द हैं :—

संस्कृत वाक्य प्रबोध
सम्वत् १९३६ वि०

'पठन पाठन व्यवस्थायां द्वितीयं पुस्तकं'—यह ग्रंथ और व्यवहार भानु अब ऐसे ढंग पर छपते हैं कि जिनसे यह नहीं मालूम होता कि यह दोनों वेदाङ्ग प्रकाश के अङ्ग हैं किन्तु दोनों ग्रन्थों के प्रथम संस्करणों से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाती है।

हमारा व्यवहार धर्म-युक्त क्यों कर होना चाहिये। इसका बोध इस पुस्तक (हिन्दी) से बहुत अच्छी तरह होता है। कई दृष्टान्त बड़े मनोरंजक हैं।

व्यवहार भानु
सम्वत् १९३६ वि०

इसकी भूमिका में सम्वत् १९३६ वि० फाल्गुन शुक्ला १५ (अर्थात् शुक्रवार २६ मार्च सन् १८८० ई०) अंकित है। यही तिथि इसकी रचना की प्रतीत होती है। इसके ऊपरी पृष्ठों से स्पष्ट है कि यह पठन-पाठन व्यवस्था की तीसरी पुस्तक है। पहले-पहल यह पुस्तक वैदिक यन्त्रालय में संवत् १९३६ वि०

( अर्थात् उस समय ) में छपी थी जब कि यन्त्रालय काशी में था।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने श्री स्वामी जी के विचारों के विषय में कुछ भ्रम फैलाया था*। उसी का उत्तर इसमें है। हिन्दी में यह पुस्तक कुल २३ पृष्ठों की है।

भ्रमोच्छेदन
सम्वत् १९३७ वि०

इस ग्रन्थ के अन्त में जो संस्कृत पद्य है उससे रचना-काल बृहस्पतिवार ज्येष्ठ द्वितीया कृष्ण पक्ष सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् २० मई सन १८८० ई० ठहरता है।

संस्कृत व्याकरण में यह बात है कि :—

सन्धि विषय
सम्वत् १९३७ वि०

( १ ) अच् के स्थान में हल्
( २ ) हल् " " " अच् और
( १ ) हल् " " " हल्
( २ ) अच् " " " अच्

भी हो जाया करते हैं। संधि के ज्ञान से ही यह बात समझ में आ सकती है। सन्धि के ही ज्ञान से पदार्थ ज्ञान और वाक्यार्थ ज्ञान प्राप्त हो सकते हैं। फलतः संधि विषय व्याकरण का प्रथम भाग है। उसी का बोध इस ग्रन्थ में यथोचित रूप से कराया गया है।

---

* राजा साहब की रचना का नाम 'निवेदन' था। इसी के उत्तर में भ्रमोच्छेदन है किन्तु इसके उत्तर में उनकी ओर से दूसरा निवेदन छपा तो उसका उत्तर अनु-भ्रमोच्छेदन नामी पुस्तक में पंडित भीमसेन शर्मा जी की ओर से दिया गया है जो कि वैदिक यंत्रालय से ही प्रकाशित है।

गाय आदि पशुओं की रक्षा से सब प्राणियों को सुख हो। इसलिये हिन्दी भाषा में यह पुस्तक रची गई। यह २६ पृष्ठों में है। इसमें गाय की उपयोगिता के विषय में अनेक बातें बड़ी उत्तम हैं।

गोकरुणानिधि
सम्वत् १९३७ वि०

इसके अन्त में जो' दो संस्कृत पद्य हैं उनके अनुसार रचना काल गुरुवार फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी सम्वत् १९३७ वि० ( तदनुसार २४ फरवरी सन् १८८२ ई० ) है।

श्री स्वामी जी ने समझा कि गोरक्षा का प्रश्न बहुत आवश्यक है, और इसके द्वारा हिन्दुओं में कुछ संगठन हो सकता है, इस कारण उन्होंने केवल पुस्तक ही न लिखी बल्कि इसका अंग्रेज़ी अनुवाद भी कराने का उद्योग किया था और अंग्रेज़ी सरकार में मेमोरियल भेजने का भी उद्योग किया था।

नामिक में सुप् के साथ संज्ञा आदि शब्दों का विधान हुआ करता है इसी कारण से 'नामिक' नाम है। सन्धि विषय के पश्चात् ही इसका पढ़ना उत्तम है। इसी लिये पठन-पाठन के निमित्त यह पांचवीं पुस्तक नियत की गई है।

नामिक
सम्वत् १९३८ वि०

कारक का अर्थ है—करने वाला, ग्रन्थ में कारक का वर्णन है इस कारण यह नाम रखा गया है। वास्तविक बात यह है कि कारकों से जितना अर्थ जाना जा सकता है उतना अन्य प्रकरणों से नहीं क्योंकि कारक समूह क्रिया द्रव्य और गुण वाची शब्दों के सम्बन्ध से समस्त वाक्यों के अर्थों का प्रकाशक है।

कारकीय
सम्वत् १९३८ वि०

इस ग्रन्थ द्वारा पठन-पाठन होने से सुगमता के साथ कारक सन्धि का बोध हो जाता है और वेदादि शास्त्रों का वाक्यार्थ बोध होने में कठिनाई नहीं रहती है।

सामासिक
सम्वत् १९३८ वि०

अनेक पदों को एक पद में जोड़ देने को समास कहते हैं। अनेक पद जब मिलकर एक पद हो जाते हैं तब इस विद्या के जाने बिना उस जुड़े हुये बड़े पद का अर्थ नहीं जाना जा सकता। फलतः इस आवश्यक विषय की पूर्ति उत्तम रीति पर इस ग्रन्थ द्वारा होती है।

स्त्रैणताद्धित
सम्वत् १९३८ वि०

पढ़ने वालों को स्त्री और तद्धित प्रत्ययों का बोध होना उचित है। इनके जाने बिना अन्य शास्त्रों का पढ़ना भी सुगम नहीं। संस्कृत में जैसा तद्धित प्रत्ययों से अधिक बोध होता है वैसा अन्य से नहीं। इसी कारण इस ग्रन्थ में स्त्री प्रत्यय का प्रकरण थोड़ा-सा और अधिक तद्धित का ही है।

अव्ययार्थ
सम्वत् १९३८ वि०

इसमें अकारादि क्रम से अर्थ और उदाहरण सहित अव्यय लिखे गये हैं। अपने ढंग की एक अपूर्व चीज़ है। विषय के समझने में बड़ी सुगमता होती है।

ज्ञात रहे कि जिस शब्द का स्वरूप तीनों लिङ्ग, सातों विभक्तियों और इनके एक वचन, द्विवचन, बहुवचन (अर्थात् सात विभक्तियों के तीन-तीन के हिसाब से इक्कीस वचनों) में एक-सा बना रहे। जैसा उसका स्वरूप प्रथम हो वैसा ही

मध्य और अन्त में भी बना रहे उसमें कोई विकार न हो उसको अव्यय कहा जाता है।

सदृशंत्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

जो शब्द समग्र प्रकृति प्रत्ययों के संयोग से भाव, कर्त्ता, कर्म, भूत, भविष्यत, वर्त्तमान काल, एक, दो और बहुत से अर्थों के वाचक हैं उनको आख्यात कहते हैं। ग्रंथ में विशेष रूप से आख्यात शब्दों का ही व्याख्यान है इस कारण आख्यातिक नाम पड़ा है।

आख्यातिक
सम्वत् १९३८ वि०

व्याकरण में यह एक कठिन विषय है किन्तु इसके द्वारा वैदिक और लौकिक सब सूत्र सुगम हो गये हैं और इसमें जो सूची लगाई गई है उससे इस ग्रंथ की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है।

वेदों में उदात्तादि स्वर ऊपर नीचे लगे रहते हैं। जब तक मनुष्य उनको ठीक-ठीक न जाने तब तक लौकिक वैदिक वाक्यों व छन्दों का स्पष्ट प्रिय उच्चारण, गान और ठीक-ठीक अर्थ भी नहीं जान सकता अर्थात् उनसे उचित लाभ नहीं उठा सकता। उन्हीं स्वरों की व्यवस्था का उत्तम बोध इस ग्रंथ से हो सकता है।

सौवर
सम्वत् १९३९ वि०

सब ओर से लौकिक वैदिक और शास्त्रीय व्यवहार के साथ जिसका सम्बन्ध रहे अर्थात् उक्त तीनों प्रकार का व्यवहार जिससे सिद्ध हो उसको परिभाषा कहते हैं यह परिभाषाओं का व्याख्यान रूप ग्रंथ है इस कारण इसका नाम पारिभाषिक रक्खा गया है। परि-

पारिभाषिक
सम्वत् १९३९ वि०

भाषाओं में से जो अष्टाध्यायी के परिभाषा सूत्र हैं वह सन्धि विषय में व्याख्यापूर्वक लिखे गये हैं। इसमें केवल उन परिभाषाओं का लिखा गया है जो पातंजलि के महाभाष्य में हैं। ज्ञात रहे कि परिभाषाओं का मुख्य तात्पर्य दोषों को निवारण करके व्यवस्था कर देना होता है। अस्तु व्याकरण के सन्धि आदि प्रकरणों में जो २ सन्देह पड़ते हैं वह इन परिभाषाओं के पठन पाठन से निवृत्त हो जाते हैं।

यह ग्रन्थ यथार्थ व्याख्यान और भूमिका सहित आर्य्यातिक में छप चुका है। परन्तु उसमें धातु अर्थों के सहित व्याख्यान के बीच-बीच में पड़े हैं इस कारण उस ग्रंथ में मूल का पाठ करना तथा याद करना कठिन पड़ता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये यह मूल पुस्तक पृथक् छपवाई गई है।

धातुपाठ
सम्वत् १९३९ वि०

हाँ, इस पुस्तक से यह भी जाना जा सकता है कि कौन-कौन धातु किस-किस गुण में किस-किस अर्थ में सेट व अनिट है।

इस पुस्तक का नाम गणपाठ इस कारण है कि इसमें एकत्र मिला के बहुत-बहुत शब्दों का समुदाय पठित है।

गणपाठ
सम्वत १९३९ वि०

अष्टाध्यायी में सर्वादि से लेकर जितने गण जिन-जिन सूत्रों पर हैं उन सूत्रों सहित सब इसमें लिखे गये हैं। इन गणों की सूची भी दी गई है। आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं टिप्पणियाँ दी गई हैं ताकि सुगमता हो। परन्तु केवल धातुपाठ और उणादि दो गण पृथक्-पृथक् लिखे गये हैं।

इसमें उणादि सूत्रों की वृत्तियाँ सुगम संस्कृत में हैं। कठिन सूत्र का अर्थ और शब्दों के पर्याय व विशेषवाचक शब्द भी दिये गये हैं।

**उणादि कोष**
**सम्वत १९३९ वि०**

जो लोग पठन-पाठन-व्यवस्था की वह पुस्तकें पढ़ चुके हैं जो कि इससे पहले की हैं उनके लिये इसकी संस्कृत का समझना कोई कठिन काम नहीं है।

यह अपूर्व कोष (केवल शब्दों का संग्रह) विशेष कर वेद से (और सामान्यतः लौकिक ग्रन्थों से भी) सम्बन्ध रखता है। यह और इसका भाष्य निरुक्त दोनों यास्क मुनि जी के बनाये हुये हैं।

**निघण्टु**
**सम्वत १९३९ वि०**

यह ग्रन्थ विशेष उद्योग के साथ प्रकाशित कराया गया है। जो पाठान्तर अनेक प्रतियों में हैं उनको नीचे दिखला दिया गया है और अकारादि क्रम से इसकी शब्दानुक्रमणिका भी इसके अन्त में लगाई गई है, जिससे कोई भी शब्द सुगमता के साथ ढूँढा जा सकता है। इसके शब्दों में स्वर भी लगाये गये हैं। वेद का वास्तविक अर्थ जानने में इस ग्रन्थ से विशेष रूप से सहायता मिलती है। इसी कारण इसको विशेष परिश्रम के पश्चात् छपवाया गया है।

अब कुछ शब्द प्रचलित व निघण्टु अनुसार अर्थ सहित नीचे दिये जाते हैं जिनसे प्रत्यक्ष है कि किसी शब्द का अर्थ कितना बदल गया है :—

| शब्द | अर्थ | |
|---|---|---|
| | प्रचलित | निघण्टु अनुसार |
| विप्र | ब्राह्मण | बुद्धिमान |

| | | |
|---|---|---|
| अहि | सर्प | मेघ |
| अश्मा | पाषाण | मेघ |
| गौरी | महादेव की स्त्री | वाणी |
| स्वाहा | अग्नि की स्त्री | वाणी |

इससे अनुमान किया जा सकता है कि निघण्टु की महत्ता कितनी है।

श्री स्वामी जी के मन्तव्य संक्षेप के साथ सत्यार्थ प्रकाश (दूसरे संस्करण) के अन्त में सन् १८८४ ई० में सब से पहले प्रकाशित हुये हैं। परन्तु ज्ञात रहे कि यह मन्तव्य बाद को पृथक् भी कई बार अच्छी संख्या में प्रकाशित हुये हैं।

स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश सम्वत १९३९ वि०

इसके आरम्भ में श्री स्वामी जी ने कहा है :—

"मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना का मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसका छोड़ना छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।"

इसके सिवा—ईश्वर, सृष्टि, राजा, प्रजा, शिक्षा, तीर्थ आदि ५१ बातों की परिभाषा उत्तम रीति पर बताई गई है। यह स्वमन्तव्यामन्तव्य कुल ८ पृष्ठों का है परन्तु बड़े मारके का है।

यह ग्रंथ श्री स्वामी जी के जीवन काल में मुद्रित नहीं हुआ। इसकी हस्त लिखित प्रति कुछ खंडित हो गई थी किन्तु उसे ठीक कराया गया है। हिन्दी में यह प्रथम,

अष्टाध्यायी का भाष्य सन्वत १९३५ वि० (में आरम्भ)

नवीन और बहुत उपयोगी पुस्तक वेद को समझने के लिये है।

सन् १९४० ई० तक केवल दो भाग ही प्रकाशित हो सके हैं।

नियम और उप-नियम

नियम और उप-नियम जो आर्य समाजों के निमित्त श्री स्वामी जी ने बनाये हैं वह भी पुस्तक के रूप में १२ पृष्ठों (आकार ७½ × ४½ इंच) में ठहरते हैं। यह भी बहुत भारी संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। इनसे उद्देशों तथा संगठन सम्बन्धी नियमों पर बड़ा प्रकाश पड़ता है।

उपनियमों में कुछ संशोधन श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की ओर से शनिवार २६ जनवरी सन् १९३४ ई० (माघ वदी ६ सम्वत् १९९१ वि०) को हुआ है और ऐसी प्रति सभा की ओर से पृथक् छपवाई गई है। नियम व उपनियमों की नींव वास्तव में पहले बम्बई में सम्वत् १९३२ वि० (सन् १८७५ ई०) में पड़ी थी और लाहौर में प्रथम संशोधन सन् १८७७ ई० अर्थात् सम्वत् १९३४ वि० में हुआ था।

स्वीकार पत्र

फाल्गुन कृष्ण ५ मंगलवार अर्थात् २७ फरवरी सन् १८८३ ई० को उदयपूर में श्री स्वामी जी ने एक वसीअत नामा (स्वीकार पत्र) अपनी सारी सम्पत्ति के निमित्त लिखा था। इसके अनुसार २३ व्यक्तियों को इसका सदस्य नियुक्त किया था। यह स्वीकार पत्र पुस्तक रूप में कई बार छप चुका है और 'दयानन्द ग्रंथ माला—शताब्दी संस्करण' के दूसरे भाग के अन्त में भी छपा हुआ है। यह

केवल ६ पृष्ठों का ही है किन्तु इससे उनके विचारों पर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ता है।

## (२) पुस्तक रूप में शास्त्रार्थ

श्री स्वामी जी महाराज ने अपने जीवन काल में अनेक शास्त्रार्थ किये थे। उनमें से जो पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये हैं उन्हीं का उल्लेख आगे किया जा रहा है—

मंगलवार कार्तिक सुदी १२ सम्वत् १९२६ वि० अर्थात् १६ नवम्बर सन् १८६९ ई० को काशी में श्री स्वामी जी का शास्त्रार्थ पाषाणमूर्ति पूजा के विषय पर हुआ था। उसी का उल्लेख संस्कृत व भाषा दोनों में कुल १६ पृष्ठों में है।

काशी शास्त्रार्थ
सम्वत १९२६ वि०

हुगली (कलकत्ता के पास) में पंडित ताराचरण तर्करत्न जी के साथ चैत सुदी एकादशी सम्वत् १९३० वि० (६ अप्रैल सन् १८७३ ई०) को श्री स्वामी जी का शास्त्रार्थ—प्रतिमा पूजन के विषय पर हुआ था। उसी का वर्णन इस छोटी-सी पुस्तक में मिलता है किंतु अन्य अनेक उपयोगी बातें भी हैं। यह पुस्तक सब से पहले बनारस के 'लाइट प्रेस' में सम्वत् १९३० वि० सन् १८७३ ई० में छपी है। ८×५ इंच के आकार में केवल २७ पृष्ठों की है।

प्रतिमा पूजन
विचार *
सम्वत १९३० वि०

मार्च सन् १८७७ ई० में चांदापूर जिला शाहजहांपूर के

---

*यह शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ था किन्तु इसको हिन्दी में बाबू हरिश्चन्द्र जी ने पहिले पहल छपाया था।

| सत्य धर्म विचार * |
| --- |
| सम्वत १९३७ वि० |

मेले में ईसाई व मुसलमान विद्वानों के सत्य धर्म की बाबत विचार हुआ था। वही चीज हिन्दी के ३० पृष्ठों में है।

इसके अन्त में जो संस्कृत पद्य है उससे इसके लिखे जाने का समय मंगलवार १२ श्रावण शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् १७ अगस्त सन् १८८० ई० है।

| सत्यासत्यविवेक |
| --- |

बरेली के राजकीय पुस्तकालय में श्री स्वामी जी व पादरी टी० जी० स्काट साहब का शास्त्रार्थ तीन दिन हुआ था।

पहला दिन—अनेक जन्म के विषय में।

दूसरा दिन—अवतार अर्थात् ईश्वर का शरीर करना।

तीसरा दिन—ईश्वर का पाप क्षमा करना।

इन विषयों के शास्त्रार्थ की बातें हिन्दी में विस्तारपूर्वक उक्त ग्रन्थ में छपी। यह शास्त्रार्थ २५, २६, व २७ अगस्त सन् १८७९ ई० अर्थात् भादों सुदी ८, ९, व १० सम्वत् १९३६ वि० को हुआ था।

## चेतावनी

जो लोग इस भ्रम में हैं कि श्री स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है वह सबका सब अथवा अधिकांश खण्डन पूर्ण है, उनको जतला देना या जान लेना चाहिये कि श्री स्वामी जी द्वारा लिखी हुई सामग्री वस्तुतः खण्डन से कहीं अधिक

* यह शास्त्रार्थ मुसलमानों की ओर से 'मुबाहसा शाहजहांपूर' के नाम से उर्दू में छपा है इसको एक प्रति 'मुजूतबाई प्रेस' दिल्ली की छपी हुई ( सन् १९१४ ई० की ) मैंने देखी है।

मण्डन पूर्ण है जैसा कि उनके समस्त ग्रन्थों पर विचार करने से भली भांति स्पष्ट हो जाता है।

श्री स्वामी जी के समस्त ग्रन्थों की बाबत यदि मोटा सा भी हिसाब किया जाय तो उनकी लिखी हुई सारी सामग्री बड़े आकार ( अर्थात् लगभग ९½ × ६ इञ्च ) में लगभग १५ हज़ार पृष्ठों की ठहरती है।

सम्वत् १९८१ वि० सन् १९२५ ई० में १५ से २१ फरवरी तक शिवरात्री के अवसर पर मथुरा नगर में श्री स्वामी जी की जन्म शताब्दी बड़ी धूम-धाम के साथ मनाई गई थी। उसके उपलक्ष में—काशी शास्त्रार्थ, वेद विरुद्ध मत खण्डन, शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण, सत्यार्थ प्रकाश, आर्य्याभिविनय, संस्कार विधि, भ्रान्ति निवारण, आर्य्योद्देश्य रत्न माला, पंच यज्ञ महा विधि, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, व्यवहार भानु, भ्रमोच्छेदन, सत्य धर्म विचार और गो करुणा निधि—इन १४ ग्रन्थों का एक संस्करण दो भागों में ( आकार ९½ × ६ इञ्च ) लगभग १९०० पृष्ठों में वैदिकयन्त्रालय अजमेर में 'दयानन्द ग्रन्थमाला—शताब्दी संस्करण' के नाम से छपा है। उसमें दिखलाया गया है कि उक्त ग्रंथों में से प्रत्येक सन् १९२४ ई० तक कब कब कितना छपा है।* इस ग्रन्थ माला के दूसरे

* वेद विरुद्ध मत खण्डन पहली बार जिस सन् में छपा वह संख्या अंकित नहीं और 'शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण' के प्रथम संस्करण का समय शताब्दी संस्करण में सन् १९०१ ई० लिखा हुआ है। उसके सम्बन्ध में मुझे यह कह देना है कि यह ग्रन्थ भाषा अनुवाद सहित पहले पहिले उस सन् में छपा। वास्तव में मूल ग्रन्थ सन् १८७५ ई० में छपा है। इसका गुजराती अनुवाद मार्च सन् १८७५ ई० में ही हो गया था।

भाग में 'स्वीकार पत्र' की प्रति भी सम्मिलित है किन्तु वह उक्त १४ ग्रन्थों से अधिक चीज है।

श्री स्वामी जी द्वारा लिखा हुआ बहुतेरा कार्य अधिक से अधिक दस वर्ष के भीतर का ही ठहरता है क्योंकि सन् १८७४ ई० से पहले की चीजें बहुत ही कम हैं। क्या ही अच्छा हो यदि इस विषय पर और अधिक खोज के साथ थोड़ा-बहुत प्रकाश डाला जाय और यथा सम्भव यह भी दिखाया जाय कि अमुक कारण से इसकी रचना आवश्यक समझी गई। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि श्री स्वामी जी अक्टूबर सन् १८७४ ई० में बम्बई प्रान्त में प्रचारार्थ गये। उधर वल्लभाचार्य मत का जोर था। इस कारण 'वेद विरुद्ध मत खण्डन' के लिखे जाने की नौबत आई थी। यही पुस्तक काफी न थी इसी कारण इसके बाद ही 'शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण' लिखा था।

श्री स्वामी जी द्वारा जो सुधार हुआ है, जो जागृति हुई है यदि उसको एक ओर रख कर हम उनकी हिन्दी की सामग्री पर ध्यान दें तो केवल इस कार्य के विचार से उनका सारा काम कुछ कम महान् नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि उनके अनेक ग्रन्थों में संस्कृत की अच्छी खासी मात्रा है तथापि हिन्दी की सामग्री संस्कृत से अवश्यमेव अधिक है। निदान हिन्दी में उनका जितना लेख है और उनकी लिखी हुई सामग्री का जितना प्रकाशन व प्रचार हुआ है उससे भली भांति स्पष्ट है कि उनके द्वारा हिन्दी का कितना बड़ा काम हुआ है।

मूल्य की दृष्टि से प्रत्येक ग्रन्थ सस्ता है क्योंकि ६३×७

इञ्च आकार के ४००[1] पृष्ठों का अथवा ७½ × ५ इञ्च वाला लगभग ८०० पृष्ठों वाला सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में साधारणतः अधिक से अधिक छः आने में मिल जाता है।

श्री स्वामी जी के ग्रन्थ प्रायः वैदिक यन्त्रालय अजमेर से छपे हैं। यह यन्त्रालय सन् १८८० ई० में काशी में स्थापित हुआ था। बाद को प्रयाग और फिर अजमेर पहुँचा है। उक्त सन् से पहले जो ग्रन्थ छपे हैं वह कई दूसरे प्रेसों में भी छपे हैं। दयानन्द ग्रन्थ माला—शताब्दी संस्करण से भी इस बात का कुछ पता लग जाता है क्योंकि उसमें सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि व कुछ अन्य ग्रन्थों के पहले पहिल छापे जाने का समय सन् १८८० ई० ( वैदिक यन्त्रालय की स्थापना ) से पूर्व का दिखलाया गया है। इसके सिवा उक्त विषय पर उन पत्रों द्वारा भी बहुत कुछ जाना जा सकता है जो कि श्री स्वामी जी की ओर से अनेक लोगों के नाम हैं और जो कि अनेक लोगों की ओर से श्री स्वामी जी महाराज के नाम हैं। ऐसे पत्रों के विषय में आगे चलकर कुछ लिखा जायगा। किन्तु यह भी ज्ञात रहे कि पत्रों के सिवा जो विज्ञापन श्री स्वामी जी महाराज की ओर से हैं उनसे भी ग्रन्थों की बाबत बहुत कुछ मालूम हो सकता है।

श्री स्वामी जी के कई ग्रन्थ—सत्यार्थ प्रकाश, आर्य्याभिविनय, व्यवहार भानु व आर्य उद्देश्य रत्न माला—मेरी दृष्टि में अवश्य ऐसे आये हैं जो कि सन् १९२० ई० के बाद वैदिक यन्त्रालय के सिवा अन्य स्थानों के प्रकाशित हैं। संस्कार विधि पर दो टीकायें 'संस्कार चन्द्रिका' व 'संस्कार

प्रकाश' और 'सत्यार्थ प्रकाश' के आदि के दो समुल्लासों के भाष्य भी मेरी दृष्टि में आये हैं। मेरे विचार से श्री स्वामी जी के ग्रन्थों की बाबत आवश्यकता है कि उनके सम्बन्ध में यह बातें लिखी जायें :—

( १ ) प्रत्येक ( मूल ) ग्रन्थ कब, कितना, किस आकार में और कहां छपा है। किसके द्वारा प्रकाशित हुआ है।

( २ ) टीका, टिप्पणी या किसी अन्य विशेषता के साथ वह ग्रन्थ छपा है तो उसका भी उल्लेख यथोचित रूप से किया जाय।

( ३ ) किसी ग्रन्थ का अनुवाद किसी ने किस भाषा में कब किया। वह अनुवाद कब, कितना और कहाँ छपा। किस के द्वारा प्रकाशित हुआ। यदि अनुवाद अनेक हुये हैं तो प्रत्येक का उल्लेख यथोचित रूप से किया जाय। और यदि अनुवाद के संस्करण कई हुये हैं तो यथा संभव प्रत्येक संस्करण का समय प्रकाशक, प्रेस, संख्या और आकार आदि का उल्लेख होना उत्तम है। इन बातों के सिवा यदि कोई और बात उसके विषय की हो तो उसे भी अवश्य दिखलाना चाहिये।

इसमें सन्देह नहीं कि जो कुछ लिखने तथा एकत्र कर देने के लिये मैंने ऊपर कहा वह एक कठिन काम है किन्तु उसकी उपयोगिता तथा महत्ता से कोई विचारशील पुरुष इन-कार नहीं कर सकता।

# तृतीय अध्याय

## पत्र-व्यवहार

पत्रों में अनोखा जादू हुआ करता है। यही मूलकारण है कि यदि किसी व्यक्ति के हाथ दूसरे का पत्र लगता है तो एक ही आध ऐसा होता है जो दूसरे का पत्र न पढ़ता हो। दूसरी बात यह कि मनुष्य के आचार-विचार आदि पर जो प्रकाश उसके लिखे हुये पत्रों से पड़ता है वह उसके लेख या व्याख्यान आदि से कभी-कभी नहीं पड़ा करता है।

श्री स्वामीजी के पहले तथा उनके समय में भी जो हिंदी सेवी हुये हैं उनमें से किसी के भी पत्र ऐसे प्रतीत नहीं होते जो कि पुस्तक रूप में पृथक् प्रकाशित हुये हों। वास्तव में श्री स्वामी जी के ही पत्र पहले-पहल पृथक् पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये प्रतीत होते हैं।

'दयानन्द लेखावली' के नाम से सन् १९०३ ई० में एक छोटी-सी पुस्तक पंजाब प्रिंटिङ्ग वर्क्स लाहौर' में छपी थी। इसमें सात संस्कृत पत्र हिन्दी भाषा अनुवाद सहित हैं। इनमें से दो पत्र श्री स्वामी जी की ओर से थ्योसफ़ीकल सूसायटी के सभासदों के नाम व दो पत्र श्रीमती रमा के नाम हैं और तीन पत्र श्रीमती रमा के श्री स्वामी जी के नाम हैं कोई अन्य पुस्तक इससे पहले की छपी हुई अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आई और न मुझे किसी अन्य प्रकार से मालूम हुई है जिसमें श्री स्वामी जी के केवल पत्र ही पुस्तक रूप में प्रकाशित हुये हों।

श्री राम-विलास सारडा जी द्वारा 'आर्य धर्मेन्द्र जीवन' नामी एक जीवन-चरित्र श्री स्वामी जी महाराज का पहली बार सम्वत् १९६१ वि० (सन् १९०४ ई०) में प्रकाशित हुआ है। इसमें अनेक पत्र परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित हैं। इनमें से कुछ श्री स्वामी जी की ओर से हैं और कुछ श्री स्वामी जी के नाम हैं। परन्तु यह भी ज्ञात रहे कि एक दिन उक्त जीवन-चरित्र के चौथे संस्करण की एक प्रति मेरी दृष्टि में आई और उसमें वह पत्र न मिले जो कि प्रथम संस्करण में प्रकाशित हुये हैं। फलतः प्रथम के सिवा दूसरे व तीसरे संस्करणों ही में निकले हैं—इस बात की बाबत दूसरे व तीसरे संस्करणों से पता लगा है।

अब यह भी ज्ञात हो कि पत्र-व्यवहार विषयक उद्योग स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा भी उसी समय में हुआ था जब कि वह लाला मुंशीराम जिज्ञासु जी थे। इनका ग्रन्थ—'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' के नाम से सन् १९१० ई० में प्रकाशित हुआ है। इसमें केवल आठ पत्र ऐसे हैं जो कि श्री स्वामी जी के हैं। बाक़ी लगभग २०० पत्र ऐसे हैं जो कि भिन्न-भिन्न लोगों की ओर से श्री स्वामी जी की सेवा में पहुँचे हैं। इसके पश्चात् श्री पं० भगवतदत्त जी बी० ए० का उद्योग है कि 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' के नाम से श्री स्वामी जी के लगभग २३० पत्र व अनेक विज्ञापन आदि चार भागों में छपे जिनमें से प्रथम भाग सन् १९१८, द्वितीय भाग सन् १९१९ ई०, तृतीय भाग जनवरी सन् १९२७ ई० और चतुर्थ भाग जुलाई सन् १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ। इन

भागों में सब पत्र ऐसे हैं जिनको कि श्री स्वामी जी ने भिन्न-भिन्न लोगों के पास भेजा था। हाँ, यह भी ज्ञात रहे कि श्री स्वामी जी के आठ पत्र जो कि स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ में हैं वह सब उक्त चारों भागों में आ गये हैं।

'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' इस नाम से एक पुस्तक गुरुकुल-कांगड़ी जिला सहारनपुर से स्वर्गीय श्री चमूपति जी के उद्योग से सम्वत् १९९२ वि० में प्रकाशित हुई है। इसमें श्री स्वामी जी के अन्तिम काल के ही पत्र हैं। और जितने पत्र श्री स्वामी जी के हैं उनसे कहीं अधिक पत्र वह हैं जो कि श्री स्वामी जी की सेवा में भेजे गये हैं।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सम्पादित पत्रों से अनेक बातों का पता चलता है अतः उदाहरणार्थ जानना चाहिये :—

१—उस काल में कितनी जबरदस्त श्रद्धा अनेक लोगों में धर्म के लिये थी।

२—कुछ स्थानों में परस्पर विरोध भी पैदा हो गया।

३—वेदाङ्ग प्रकाश के अङ्गों को पं० भीमसेन व पं० ज्वालादत्त जी ने ही बहुत कुछ बनाया था। इसकी अशुद्धियों के जिम्मेवार श्री स्वामी जी को ठहराना ठीक नहीं।

४—कुछ अन्य पुस्तकों में जो अशुद्धियाँ हुई हैं वह वास्तव में अन्य लोगों के कारणों से हुई हैं।

५—श्री स्वामी जी गोरक्षा के विषय में बहुत कुछ करना चाहते थे।

६—जिस समय के पत्र हैं उस समय की ऐसी हिन्दी का पता चलता है जो कि साधारण व्यक्तियों द्वारा लिखी जाती

थी क्योंकि संग्रह में अनेक पत्र ऐसे हैं जो कि साधारण व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं।

श्री पं० भगवत दत्त जी द्वारा सम्पादित चारों भागों के पत्रों से श्री स्वामी जी महाराज के आचार, विचार तथा जीवन सम्बन्धी बातों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। यह सब पत्र अधिकांश श्री स्वामी जी के जीवन के अन्तिम भाग के हैं। समस्त पत्र हिन्दी, संस्कृत, उर्दू व अँग्रेज़ी में हैं। श्री स्वामी जी उर्दू व अँग्रेज़ी न जानते थे। अतः ऐसे पत्रों को उन्होंने अवश्य किसी से लिखवाया था। परन्तु हिन्दी के अवश्य और सम्भव है कि संस्कृत के कुछ पत्रों को भी उन्होंने किसी और से लिखवाया हो।* अनेक पत्रों में समय अंकित है किन्तु अनेक का समय किसी दूसरे पत्र के सहारे जाना जा सकता है। अनेक पत्रों में उस स्थान का भी नाम लिखा हुआ है जहाँ से कि वह पत्र भेजा गया था। फलतः यह कि श्री स्वामी जी की ओर से जो पत्र हैं और वह पत्र भी जो कि श्री स्वामी जी की सेवा में भेजे गये हैं अर्थात् सब के सब बड़े काम के हैं केवल उन लोगों के लिये जो कि इनसे वास्तव में लाभ उठाना चाहें।

जयपूर में समाज स्थापित हुआ। पण्डितों ने श्री स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने की चेष्टा की। श्री स्वामी जी को पत्र द्वारा यह बात मालूम हुई तो उन्होंने जयपूर के पत्र-प्रेषक बाबू

* हिन्दी व संस्कृत के अनेक पत्र आद्योपान्त उनके ही हाथ के लिखे हुये हैं।

नन्दकिशोर जी को मिती ज्येष्ठ शुक्ल १४ बुध सम्वत् १९३९ वि० के पत्र में यह लिखा :—

"देखो बड़े शोक की बात है कि जयपूर में अनेक गिरजा-घर बन गये और पादरी लोग राम कृष्णादि भद्र पुरुषों की निन्दा करते हैं और सैकड़हों ( सैकड़ों ) को बहका कर भ्रष्ट कर रहे हैं। उनके हटाने को पण्डित व राजा आदि राजपुरुषों ने कुछ भी प्रयत्न न किया। और जो आप लोगों ने सत्य वेद धर्म की उन्नति होने के वास्ते समाज स्थापित किया है उसकी उन्नति होने में पण्डित आदि विघ्नकर्त्ता होते हैं। इतने ही से तुम समझ लो कि ये क्या शास्त्रार्थ करेंगे सिवाय परोक्ष में गाल बजाने के।"※

रजवाड़ों के विषय में एक को श्री स्वामी जी ने यह लिखा है :—

"आप जानते हैं कि रजवाड़ों का लखोटिया ज्ञान है अर्थात् जब तक अग्नि के सामने रहें तब तक पिघले रहते हैं।"†

( मिती बैशाख सुदी ११ शनि सम्वत् १९३९ वि० )

श्री स्वामी जी ने फाल्गुन कृष्ण दशमी सम्वत् १९३७ वि० अर्थात् २४ फरवरी सन् १८८१ ई० को गो करुणा निधि नामक पुस्तक हिन्दी में लिखी। वह चाहते थे कि इसका अनुवाद हिन्दी में हो ताकि इङ्गलैण्ड निवासी अँग्रेज लोग गोरक्षा के महत्व को समझें। इस बात का उल्लेख उनके अनेक पत्रों में

※ ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृ० ६६।

† ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—चतुर्थ भाग, पृ० ३७।

है।* किन्तु वह यह भी चाहते थे कि गोरक्षार्थ और आर्य भाषा अर्थात् हिन्दी के निमित्त अनेक स्थानों से सरकार में मेमोरियल जायें। इन बातों की चर्चा भी उनके अनेक पत्रों में है। यहाँ केवल दो पत्रों से कुछ शब्द दिये जा रहे हैं।

"गोरक्षार्थ कितनी सही हो चुकी। इसका भी उत्तर लिखना। इस समय (आर्य भाषा के) राजकार्य में प्रवृत होने के अर्थ जो मेमोरियल छपे हैं सो शीघ्र भेजना। और आप लोग भी जहाँ तक हो सके गोरक्षार्थ सही और आर्य भाषा के राजकार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये।†

(१४ अगस्त सन् १८८२ ई०—उदयपूर से)

दूसरे पत्र में भाषा और गोरक्षा के निमित्त यह लिखा है—

"आपको अति उचित है कि मध्य देश में सर्वत्र पत्र भेज कर बनारस आदि स्थानों से और जहाँ जहाँ परिचय हो सब नगर व ग्रामों से मेमोरियल ‡ भिजवाइये। यह काम एक के करने का नहीं। अवसर चूके वह अवसर आना दुर्लभ है। जो यह कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की एक नींव पड़ जावेगी। आप स्वयं बुद्धिमान हैं। इसलिये विशेष

---

* ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—चतुर्थ भाग, पृष्ठ २३, २९, ३०, ३१, ३२, ३७।

† ऋषिदयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृष्ठ ५०।

‡ आर्य भाषा के निमित्त—लेखक

लिखना आवश्यक नहीं। और गोरक्षार्थ कितनी सही हुई है। इस विषय में ध्यान देना अवश्य है।"*

(बृहस्पति शुद्ध श्रावण शुक्ल ३, सम्वत् १९३९ वि०)

आज कल नौकरी की समस्या जैसी जटिल है उसके लिये कहा ही क्या जाय। यह समस्या सन् १८८० ई० के आस-पास में भी कुछ बेढब अवश्य थी। कला-कौशल विषयक स्कूलों की आवश्यकता आज बहुत ज्यादा बताई जाती है किन्तु श्री स्वामी जी ने ऐसे स्कूल की आवश्यकता बहुत ही पहले सोची थी। एक पत्र में लिखा है :—

"यह अब स्पष्ट है कि बहुत से पढ़े-लिखे लोगों को भी नौकरी नहीं मिलती, या वे जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कला-कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूँ। प्रत्येक पुरुष को अपनी आय का १०० वां भाग प्रस्ताविक संस्था को देना चाहिये। उस धन से चाहे तो विद्यार्थी कला-कौशल सीखने जर्मनी भेजे जायें या वहाँ से अध्यापक यहाँ बुलाये जायें। जो कोई इस फण्ड के व्यय पर इन धन्दों को सीखे, उसे प्रतिज्ञा करनी होगी कि स्वशिक्षा समाप्त करने पर सभाया फण्ड की वह १२ वर्ष तक सेवा करेगा। यह प्रश्न यहाँ विचारा जा रहा है और जो कोई परिणाम निकलेगा तो हम आपको सूचना देंगे।" †

(३० नवम्बर सन् १८८० ई०—आगरा से)

---

* ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—तृतीय भाग, पृष्ठ ५२ व ५३।

† ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन—द्वितीय भाग, पृ ष्ठ ३२

स्पष्ट रहे कि श्री स्वामी जी के पत्रों की यह थोड़ी-सी बातें हैं। परन्तु ऐसा भी कभी-कभी अवश्य होता है कि केवल भेजने वाले के पत्र से ही पत्र का आशय भली भाँति नहीं मालूम होता। जब उसके उत्तर का पता लगता है अथवा उस पत्र का पता लगता है जिसके उत्तर में वह पत्र लिखा गया है तब वास्तव में पत्र का रहस्य खुलता है। फलतः श्री स्वामी जी के कुछ पत्रों के साथ वह पत्र भी दिये जा रहे हैं जो कि श्री स्वामी जी के पत्र के उत्तर में हैं अथवा जिनके उत्तर में श्री स्वामी जी की ओर से पत्र हैं। ऐसे पत्रों से पत्रों का वास्तविक भाव भी पूर्णतया या बहुत कुछ मालूम हो जायगा और श्री स्वामी जी तथा कुछ साधारण लोगों के पत्रों व हिन्दी के नमूने भी साथ ही साथ मालूम हो जायेंगे—

( १ )

वैदिक यन्त्रालय प्रयाग

संख्या ४८। ता० १ फरवरी सन् १८८२

श्रीस्वामी जी महाराज जी योग्य पं० सुन्दरलाल वा दयाराम तथा भीमसेन का अभिवादन विदित हो

पत्र आप का आया हाल जाना। अब कुल पुस्तक २० पौंड के कागज पर छपते हैं। पहिले २४ पौंड पर वेदभाष्य और २० पौंड पर अन्य पुस्तक छपते थे सो ज्ञात हो। और आप की आज्ञानुसार वर्ष २ का पुस्तकों का हिसाब तयार करके भेजा जावेगा। परन्तु प्रयाग में यन्त्रालय १ अप्रैल सन् १८८१ को आया है सो अब ३० अप्रैल सन् १८८२ को वर्ष पूरा होगा। सो १ मई तक मैं हिसाब तैयार करके भेजूँगा।

लाला वल्लभदास जी का हिसाब पिछले रजिष्टिरों में मिला नहीं है इससे नहीं लिखा अब फारसी के रजिष्टिर जो लाला शादी राम के लिखे हैं उन को पं० सुन्दरलाल जी आप खुद देखकर अब के पत्र में आप को लिखेंगे और हमने छब्बीस २६ फरमें का ठेका जो दिया था सो न चल सका इस में पं० देवीप्रसाद और विश्वेश्वरसिंह जी ने भी बहुत प्रयत्न किया तथापि चल न सका सो अब २० फारम से अधिक एक महीने में नहीं छप सकते। तथा अव्ययार्थ के पुस्तक में कोठे बनाने से और भी देरी हुई। और अब आख्यातिक का भूमिका सहित छः फरमा छप गये हैं आगे छपता जाता है। और इस पुस्तक के बिल्कुल लौटने और नवीन बनाने में सब महाभाष्य सिद्धान्त और काशिका पुस्तकों का होता है इस से छपने के लिए नवीन कापी बनाने में देर होती है और आप के यहाँ से ठीक २ शुद्ध कापी आवे तो इतनी ढील न हो।

कागज का प्रबन्ध मुम्बई से हो जाना बहुत अच्छा है। इस का प्रबन्ध आप निश्चत कर लीजियेगा और अपने सामने एक बेल कागज का जिस में २४ रीम होते हैं वह भेजवा दीजियेगा चाहे जैसे पौंड का जैसा आप मुनासिब जानें। और मेरे पास कागज़ वाले का पता लिख भेजिये कि मैं आगे को उसी से कागज मंगाया करूँ। और छपने की स्याही भी आजाया करे। आपने जो जो पुस्तक जब जब जहां २ मंगाये बराबर भेजे। वे पुस्तक कौन से हैं कि आपने मंगाये और यहाँ से न गये। जो आप की भेजी चिट्ठी ही मेरे पास न आई हो तो मैं लाचार हूँ जैसे कि आपने महाराजे उदयपुर का इश्तिहार भेजा और

मेरे पास आज तक नहीं आया है कहीं डांक में मारा गया मैं लाचार हूँ। अब उस विज्ञापन को कृपा करके शीघ्र भेज दीजियेगा। मेला अच्छा हुआ भीड़ भाड़ ३००००० तीस लाख करीब बहुत हुई। फिर बीमारी हैजे की अमावास्या को जो फैल गई इससे सब मेला उठा दिया गया। मासिक हिसाब २४ जनवरी को आप के पास भेजा है सो पहुँचा होगा। देर यों हुई कि आर्य्यभाई बहुत लोग वैदिक यन्त्रालय में ठहरे थे उनके आदर सत्कार से तयार न कर सका। सो माफ करना और सब लोग यहाँ से प्रसन्न गये। हम लोगों को महाराजे उदयपुर को पदवी ठीक ठीक मालूम नहीं थी और आपका भेजा विज्ञापन आया नही फिर सज्जन कीर्त्ति सुधारक जो अखबार उदयपुर से आता है उस के आदि में जो महाराजा की पदवी लिखी है वही हमने छपवादी सो आप के देखने को भेजते हैं सो देख लीजिये। आगे आप जैसी आज्ञा करें उन के विषय में फिर छपवा दिया जावे। तब तक आप के वेदङ्गप्रकाश और दूसरी बार सत्यार्थ प्रकाश न छप जायगा तब तक इस यन्त्रालय में दूसरा पुस्तक नहीं छपेगा। और जो आवश्यक होगा उस में आप की आज्ञा ली जावेगी। और मेले में कोई पं० वा मुंशी नहीं मिला ❀।

आगे हम को टैप अधिक ढलवाने के वास्ते सीसा और सुरमा चाहिये विलायती देसी जो मिलता है उससे काम नहीं चलता यदि मुंमई से उसके मंगाने का प्रबन्ध हो जाय तो

❀ यहाँ तक यह पत्र पण्डित भीमसेन जी के अक्षरों में लिखा हुवा है इसके आगे राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल जी के अक्षरों में अङ्कित है

बेहतर है। आगे मुनसी और पंडित की हम को भी बड़ी तलास है पर ढब का कोई मनुष्य नहीं मिलता है। लाहौर से लाला जवाहिर-सिंह मन्त्री आर्य समाज के आये उनसे भी कहा उन्होंने कहा कि प्रयाग में तो नहीं पर लाहौर में बहुत मिल जायंगे और उन्होंने यह भी कहा कि यह यन्त्रालय लाहौर में उठ जाय तो वहाँ के समाज के मेम्बर बड़ी उन्नति करें। मैंने कह दिया कि मुझको कुछ उजर नहीं है श्री स्वामी महाराज की आज्ञा मंगालो सो निश्चय है कि इस मध्ये में आर्य समाज के लोग आप को लिखें। हिसाब आपको सब चीज़ का बहुत दुरुस्ती के साथ भेजा जायगा पर हाल में कोई मनुष्य ऐसा नहीं है कि अच्छे प्रकार से काम करे जब तक बाबू यहाँ थे तब तक तो वह खुद देखते भालते थे जब से वह चले गये हैं तब से सिर्फ दयाराम ही है सो लिखने-पढ़ने का काम जैसा चाहिये वैसा नहीं होता है मैं भी इस बात को खूब जानता हूँ। पर जब तक कि मुन्शी अच्छा नहीं मिलेगा तब तक यह ही दिक्कत रहेगी—और पं० भीमसेन भी कहते हैं कि हमारे पास काम-बहुत बढ़ गया है सो यदि आपकी आज्ञा होय तो ज्वालादत्त को बुला लें १५) महीना लेगा पर उसको आपकी आज्ञा बिना बुला नहीं सकते हैं।

(१) का उत्तर

पंडित सुन्दर लाल जी आनन्दित रहो!

विदित हो कि पत्र तुम्हारा आया। समाचार विदित हुआ। जो प्रतिमास में २० फारम वेद भाष्य के और १२ फारम वेदांग प्रकाशादि के छपें तो कुछ चिन्ता नहीं। परंतु इतने से कम

न छपना चाहिये। जो.....के मंत्री ने छापाखाना.....
.....में होने के विषय में लिखा है यह बिलकुल बेसमझ की बात है। क्योंकि प्रथम तो जगह २ छापेखाने के होने में व्यर्थ हजारों रुपये खर्च होते हैं। और छापेखाने की प्रसिद्धि होने में भी बहुत काल लग जाता है। प्रबन्ध भी बिगड़ जाता है। और भी बहुत प्रकार की हानि हो जाती है। इससे छापाखाना प्रयाग ही में रहेगा।.....में तो इस भाषा के जानने वाले कंपोजीटरों का भी मिलना दुर्लभ है। जो वह हम को लिखेगा तो हम उसको उत्तर दे देंगे। यह उसका लिखना बिलकुल व्यर्थ है।

तुम और बाबू विश्वेश्वर सिंह छापेखाने की तरफ दृष्टि रक्खोगे और भीमसेन को चेतन कर दोगे। मिति फाल्गुन वदी ३ सोमवार सम्वत् १९३८ ।*

(ह० दयानन्द सरस्वती)

---

( २ )

॥ ओ३म् ॥

श्री मन्महाराजाधिराजेषु। शोभितसमाजेष्वस्मदुद्धारकेषु॥ श्रीमत्स्वामीदयानन्द सरस्वतीष्वस्मत् कृत्ता नतिततेयाधाराः सदोल्लसंतु कोटिशः॥

उदत्तस्वेषः

यहाँ पर राज में एक मासिक पत्र जिसका नाम धर्म्म-जीवन है लाहौर से प्रतिमास आता है अब की बार मारच

* ६ फर्वरी सन् १८८१।

सम्बन्धी पुस्तक १ अंक ३ जो उसमें यह समाचार मुद्रित था श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को महाराज जोधपुर ने जन्म भर के लिये कैद कर दिया है। यहाँ के जयपुर गजट वाले ने भी इस समाचार को अपने पत्र में मुद्रित कर दिया इस असत्य समाचार को देख हमारी सभा को बड़ा शोक हुआ क्योंकि यह प्रतिष्ठा भंग समाचार जिसको ताजी रात हिन्द में इजाले हैसियत उर्फी लिखा है साक्षात विदित है इस कारण यहाँ की अंतरंग सभा से प्रबन्ध होकर एक पत्र इसका उत्तर लेनेके लिए लाहौर धर्म जीवन के पास भेजा गया है और लाहौर समाज तथा मेरठ समाज को इस विषय में संमति लेने के लिये लिखा गया है। क्योंकि इस सभा का मनोरथ इस विषय में नालिश करने का है इस कारण आपके चरणार्विंद में प्रार्थ है इस विषय में क्या अनुष्ठान होना उचित है।

ओमृतत्सत्

**बिहारीलाल**

मन्त्री वैदिक धर्म्म सभा

सवाई जयपुर

(२) का उत्तर

( ओ३म् )

श्रीयुत बिहारी लाल जी आनन्दित रहो।

धर्म्म-जीवन और मित्र-विलास आदि पत्रों का झूठ बकना ही रात दिन काम है। और जैपुर गजट वाला भी उनके सदृश ही बुद्धि रखता होगा। आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। जैसी सम्मति लाहौर और मेरठ वाले दें वैसी करो। तुम जानते

थे कि स्वामी जी जोधपुर में गये ही नहीं। फिर तुम को शोक कैसे हुआ। और हमारे लिये ऐसे सैकड़ों मनुष्य बका करते हैं, कि जैसे मित्र-विलास और धर्म्मजीवन आदि पत्रों के मांसाहारी काश्मीरी ब्राह्मण आदि लाहौर में बका करते हैं। सब से हमारा आशीर्वाद कह दीजियेगा।

मिति चै० व० ५ बुधवार सं० १९३९
( शाहपुरा ) ९ मार्च १८८२ गुरुवार
( हस्ताक्षर ) [ दयानन्द सरस्वती ]

---

( ३ )

आर्य समाज फर्रुखाबाद
२—५—८३ ई०

श्रीमत्सच्चिदानन्दस्वरूपाय परमगुरवे नमः

मान्यवर

कृपा पत्र आया इतिवृत ज्ञात किया, मान्यपत्र की प्रति पहुँची, हिसाब देख लिया ३००) रु० की हुन्डी इस पत्र के साथ रख दी है। पाठशाला की यथावत् व्यवस्था दूसरे पत्र में इसके साथ नत्थी है।

वैदिक-प्रेस में पं० रामनाथ को भेजा था इस अंतर में दूसरा मनुष्य वहाँ नियुक्त हो जाने से रामनाथ लौट आए— यन्त्रालय का हिसाब-किताब बही-खाता दुरुस्त नहीं हैं। हमारी समझ में जब तक कोई सराफी पढ़ा अच्छा प्रामाणिक मुनीम नहीं रहेगा तावत्काल हिसाब ठीक-ठीक नहीं चल सकेगा, यह रुपये का विषय है इसमें ठीक-ठीक प्रबन्ध होना चाहिए आगे

जैसी आपकी सम्मति हो, उचित जान निवेदन किया, शेष सर्व प्रकार आनन्द है। शाहपुरा के सुसमाचारों से बाधित कीजिए।

कालीचरण

(३) का उत्तर

ओ३म्

श्रीयुत कालीचरण रामचरण जी आनन्दित रहो।

पत्र तुम्हारा २-५-८३ का लिखा हमारे पास सहित ३००) की हुंडी के आया। मैं भी जानता हूँ वैदिक यंत्रालय का हिसाब गड़बड़ है। परंतु अब पंडित सुंदर लाल जी का आदमी गया है। वह हिसाब किताब लिखा करेगा। इससे आशा है कि सुधर जायगा। यदि न सुधरेगा तो जैसी आप लोगों की सम्मति यही कि एक सराफी पढ़ा हुआ अच्छा प्रामाणिक आदमी आप लोगों की सम्मति से लिया जायगा। इसके लिये आज मैंने पण्डित सुंदरलाल जी को लिखा है उनकी सम्मति आने पर मैं लिखूंगा। अथवा परवारा पंडित सुंदर लाल जी तुम को लिखेंगे। लाला सेवाराम जी तथा बाबू जी आदि को मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। और यह एक फोटोग्राफ तथा छोटा सा पत्र रामानन्द को दे दीजियेगा। और पाठशाला के कक्षा विषय में अवकाश पाकर लिखूंगा और यहाँ का समाचार भी।

शाहपुरा

मि० वै० शु० सं० १९४०। *

दयानन्द सरस्वती

* १० मई बृहस्पति सन् १८८३।

( ४ )

ओ३म्

श्रीयुत मनोहरदास खत्री संपादक भारतमित्र आनंदित रहो—आपने मेरे भेजे पत्र को प्रसन्नतापूर्वक छाप दिया उसका उपकार मानता हूँ परन्तु शेष विषय भी छापने के योग्य जान कर मैंने लिखा था क्योंकि इस पूर्व पक्ष के सम्बन्धी थियासोफीकल सुसायटी के प्रधान हैं इसीलिए यह विषय लिखा था और मैं आप को सुहृदभाव से लिखता हूँ कि यदि आप अपने भारत मित्र समाचार की विद्वानों में प्रतिष्ठा चाहें तो करणल ओलकाट आदि के करामात वा मिसमिरेजम से अनेकों के रोग निवारण आदि नितांत मिथ्या विषयक भी न छापें नहीं तो समाचार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी अब थोड़े समय में करणेल ओलकाट लाहौर में गए थे उन का रोग निवारणादि सामर्थ्य अत्यंत झूठ बड़े २ बुद्धिमान् लाहौर निवासियों ने निश्चित करके लिखा कि इन का यह सब ऊपर का ढोंग है और जितना व्यवहार बाहर वा भीतर का थियासोफीष्टों का मैं जानता हूँ इतना आर्यावर्तीय लोगों में बहुत थोड़े लोग जानते हैं जब इन लोगों ने झूठे दांभिक मिथ्या छल व्यवहारों में मेरी सम्मति लेनी चाही मैंने नहीं दी तभी से वे अपना प्रपंच पृथक करने लगे और मैं उन से पृथक हो गया अस्तु थोड़े ही लेख से आप बहुत समझ लेंगे एक श्रीकृष्ण खत्री ने ता० २८ वीं जुलाई सन् १८८३ को लिखकर हमारे पास भेजा है और उन्होंने बहुत से सनातन आर्य धर्म के प्रयोजनादि विषयों में आर्य पंचांग बनाने के लिए मुझ से सहाय चाहते हैं तथा आर्यसमाजों से भी

जिस पत्र पर लेख किया है वह पत्र भारतमित्र कार्यालय का है इसलिए मैं आप से पूछता हूँ कि उक्त महाशय किस प्रकार के गुण कर्म स्वभाव वाले हैं और जैसा उन ने लिखा है कि इसमें भारतमित्र सम्पादक की भी विशेष सहानुभूति है आप इन को योग्य समझते हैं यदि इस कार्य के योग्य समझते हों तो इस पत्र को देखते ही मुझको प्रत्युत्तर लिखिये तत्पश्चात् आर्यसमाजों को उचित होगा, लिखा जायगा और जो एक पत्र बहुत दिन हुए मैंने लिखा था जिसमें गोरक्षार्थ अर्जी देने का मसोदा वहाँ के वकील बारिष्टरों से पूछ के आप लिखें उसका क्या हुआ अब उसमें अधिक विलंब करना उचित मैं नहीं समझता यहाँ जोधपुर का समाचार पश्चात् लिखा जायगा*

(४) का उत्तर

## श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी महाराजकी सेवामें

श्रीयुत महाशय श्रीकृष्ण जी खत्री सम्पादक भारतमित्र कलकत्ता का पत्र।

भारतमित्र कार्यालय।

नं ६० कौसस्ट्रीट कलकत्ता, १८ आगष्ट १८८३

महानुभव !

आपके कृपा पत्र से कृतार्थ हुआ। आप "भारतमित्र" के

*इस पत्र के अन्त में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का हस्ताक्षर नहीं है परन्तु इस पत्र में श्रीयुत महाशय श्रीकृष्ण जी खत्री कलकत्ता के २८ जूलाई १८८३ के पत्र का वर्णन है जो श्रीस्वामी जी महराज के नाम उक्त महाशय जी ने भेजा था।

यथार्थ हितैषी हैं इस लिये भारतमित्र आपके पास ऋणी है। हम आपको अनेक धन्यवाद देते हैं। परंतु इस अवसर पर इसका कुछ विवरण आपसे कहना उचित समझता हूँ।

देश हित के लिये कई मित्रों ने मिल कर 'भारतमित्र पत्र प्रकाशित किया है। इस में किसी का कुछ स्वार्थ नहीं है। मित्रगण अपना २ अवसर समय इस पत्र की सेवा में लगाते हैं। इन ही मित्र वर्गने एक कमेटी स्थापित की है उसी भारत-मित्र कमेटी से सब कार्य्य निर्वाह होता है। बाबू मनोहरदास खत्री भारतमित्र के सम्पादक नहीं है जैसा कि आप जानते हैं परंतु मैनेजर ( कार्य सम्पादक ) हैं। पं छोटुलाल मिश्र इस पत्र के सम्पादक है। कई मास से विषय कर्म्म में व्याप्त रहने के कारण यह भारतमित्र का सम्पादन नहीं कर सकते। इनके एक मित्र श्रीकृष्ण खत्री ने सम्पादन का भार लिया है। भारत-मित्र में अब सब लेख उन्हीं का है। वास्तव में अब वही भारत-मित्र सम्पादक हैं। अवश्य इन सब लेखों में छोटु जी की सम्मति रहती है। यही श्रीकृष्ण खत्री "ज्ञानवर्धिणी" सभाके सम्पादक भी हैं जिनके विशेष परिश्रम से गोरक्षा विषय के शास्त्र यहां से आपकी सेवा में गये थे। यह महाशय अंग्रेजी में भी व्युतपन्न हैं। इस पत्र के लेखक भी वही श्रीकृष्ण खत्री हैं।

अब में ( श्रीकृष्ण खत्री ) आपसे परिचित होगया॥ आप भारतमित्र-पत्र को देख कर जैसी कुछ मेरी योग्यता समझें। "आर्य्य पंचांग" बनाने से मेरी यह इच्छा है कि इस से सर्व साधारण को आर्य्य समाज के वैभव का ज्ञान हो जायगा। इन

समाजों से भारत वर्ष की कहां तक उन्नति हुई और होने की सम्भावना है यथार्थ में स्वामी दयानन्द जी-से आर्य्य भूमि का कैसा हित हुआ, सबको "आर्य्य पंचांग" से घर बैठे इस विषय का ज्ञान हो जायगा। इसी अभिप्राय से मैंने आपकी सहायता मांगी। अब आप जैसा उचित समझें। लाहोर "आर्य्या" के सम्पादक अजमेर, प्रयाग, परुखाबाद, साजिहान-इत्यादि नगरों के आर्य्य समाजों के मन्त्री हम लोगों पर बिषेष कृपा रखते हैं।

गोरक्ष विषय के आवेदन पत्र के लिए आपने लिखा सो उस का यत्न हो रहा है। यथा समय में आपको लिखूँगा।

कार्नेल आलकट साहब के विषय में आपके उपदेश के लिये मैं कृतज्ञ हुँ। ऐसा कोई विषय भारतमित्र में नहीं रहता जिसका विशेष प्रमाण हमें न मिला हो। परंतु जब बात बात में हमें दूसरे सम्बाद पत्र और मान्य मनुष्यों पर निर्भर करना होता है तो किसी समय में भ्रम होना असम्भव नहीं है। अंत में "आर्य्य पंचांग" के विषय में आपकी इच्छा जानने की आशा लगी रही। आपकी अभिरुचि जानने पर इस विषय का एक विज्ञापन भारतमित्र में दूँगा। कृपा कर पत्र का उत्तर शीघ्र दीजियेगा।

आपका कृपाकाङ्क्षी

**श्रीकृष्ण क्षत्री**

सम्पादक "भारतमित्र

समस्त प्रकाशित पुस्तकों में श्री स्वामी जी की ओर से कुल २०० के लगभग पत्र पाये जाते हैं। इनमें से सब से पुराना मेरे विचार से ❀ फाल्गुन बदी २ इंदुवार सम्वत् १९३१ वि० का है जो कि श्री गोपालराव हरिदेशमुख जी के नाम का है और तृतीय भाग के पृष्ठ १४२ पर आरम्भ होता है।

श्री स्वामी जी ने लगभग २० वर्ष तक काम किया था। इतने काल के कुल २०० के ही लगभग प्रकाशित पत्र व थोड़े से अन्य अप्रकाशित पत्र वास्तव में बहुत कम हैं।। सच तो यह है कि जिस समय में इनके निमित्त कुछ काम करने की आवश्यकता थी उस समय में काम नहीं किया गया। निस्सन्देह यह पहली उदासीनता हमारी ओर से थी किन्तु जो पत्र बड़ी खोज व परिश्रम के पश्चात् प्रकाशित हुये हैं उनके प्रति भी हमारी उदासीनता कुछ कम नहीं है क्योंकि श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सम्पादित पत्र-व्यवहार के छपने की दुबारा नौबत शायद नहीं आई † और न इस एक के बाद कोई और पुस्तक उनकी ओर से पत्रों के विषय में प्रकाशित हुई है। इसके उपरान्त यह भी स्पष्ट रहे कि श्री भगवत दत्त जी द्वारा जिन पत्रों का सम्पादन हुआ है उनमें-से भी किसी भाग के दुबारा छपने की नौबत शायद अभी तक नहीं आई है। प्रत्येक भाग यद्यपि एक हज़ार से अधिक नहीं छपा है।

---

❀ २२ फरवरी सन् १८७५ ई०।

† पत्र-व्यवहार की कुल प्रतियाँ पहली बार केवल एक हज़ार ही छपी थीं।

सुना है कि श्री स्वामी जी के कुछ अप्रकाशित पत्र श्रीमती परोपकारणी सभा अजमेर में हैं। कुछ सम्भवतः पं० भगवत दत्त जी अथवा श्री प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिकार में है। २६ पत्र श्री डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा जी हेड हिन्दी विभाग प्रयाग विश्व-विद्यालय के पास हैं * मैंने इनको देखा है। उनकी कृपा से मैंने उन पत्रों की नकल ले ली है। श्री डाक्टर साहब की ओर से एक लेख उन पत्रों के सम्बन्ध में इलाहाबाद 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दी) पत्रिका अप्रैल सन् १९४० में निकल चुका है। सम्भव है कि कुछ पत्र और कहीं हों।

सन् १८७३ ई० से श्री स्वामी जी ने हिन्दी भाषा से अधिक काम लेना और उसमें व्याख्यान देना आरम्भ किया। क्योंकि सन् १८७३ ई० की २३ फरवरी को कलकत्ता में उनके एक संस्कृत व्याख्यान का अनुवाद एक सज्जन ने अशुद्ध किया। उस समय तक उन्होंने संस्कृत भाषण का ही अभ्यास रखा था। फलतः इसी घटना के पश्चात् उन्होंने हिन्दी में उपदेश करने का निश्चय किया। निदान श्री स्वामी जी के जो पत्र उक्त समय के पहले के रहे होंगे वह सब संस्कृत में ही रहे होंगे। अधिक और न लिखते हुये यह कह देना आवश्यक है कि सब पत्रों को जो मिल सकें अच्छे ढङ्ग पर प्रकाशित होने की बड़ी आवश्यकता है। मैंने इस विषय में कुछ कार्य कर रखा है। यदि कोई सज्जन या कोई सभा इस

* इनमें से १६ पत्र श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा के नाम हैं।

काम को पूर्ण करने के लिये तैयार हो तो मैं कुछ सम्मति सहित समस्त सामग्री सहर्ष दे दूँगा।

हमारे पाठकों पर यह बात भी भली भांति स्पष्ट रहे कि पत्र-व्यवहार विषयक प्रकाशित ग्रन्थों आदि में जो विज्ञापन व प्रशंसा-पत्र आदि हैं वह भी सब के सब पत्रों के मुकाबिले में कुछ कम उपयोगी नहीं है। उनकी ओर भी पाठकों को विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। उनका प्रकाशन भी टीका-टिप्पणी सहित अच्छे रूप में (पत्रों के साथ ही साथ) होना कुछ कम अच्छी बात न होगी।

अब दो विज्ञापनों को नीचे दिया जा रहा है। एक वह जिसे उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण (सन् १८७५ ई०) की बाबत निकाला था और दूसरा वह जो कि वेद-भाष्य के अपूर्व होने के सम्बन्ध में निकाला गया था।

विज्ञापन (१)

सब को विदित हो कि जो-जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूँ विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो-जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कार विधि आदि ग्रंथों में गृह्य-सूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुत से लिखे हैं। वे उन-उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूँ जो-जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं उन सब को प्रमाण करता हूँ क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है। और जो-जो ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनि मुनि पर्यंत महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रंथ हैं, उनको भी मैं

साक्षी के समान मानता हूँ। और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २५ पंक्ति में पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करै और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परम धर्म है और जो-जो मर गये हों उनका नहीं करना क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुँचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेद-मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अंक २६७ पृष्ठ तक छपा है वहाँ देख लेना।*

विज्ञापन (२)

भाष्यस्यापूर्वत्वे दृष्टान्ताः संक्षेपतोऽन्येपि लिख्यन्ते। तत्र सत्येष्वार्षेषु सनातनग्रन्थेषु रूपकाद्यलङ्कारेण सत्यविद्या-प्रकाशिकाः प्रमाणयुक्तिसिद्धा अनुत्तमा बहव्यः कथा लिखिताः सन्ति। तासां मध्याद्दिग्दर्शनवत्काश्चित्कथा अत्र वेदभाष्य-

* यह विज्ञापन ऋग् और यजुर्वेद भाष्य के अंक १ और २ के टाईटल के पृष्ठ पर छपा है। इससे यही विदित होता है कि ऋषि ने इसे सं० १९३५ मास श्रावण में लिखा होगा।

भूमिकायां मयोल्लिखिताः। यासामज्ञानादाधुनिक पुराणग्रंथेषु भ्रान्त्या मनुष्यैस्ता अन्यथैव लिखिता उपदिश्यन्ते श्रूयन्ते च। तत्परीक्षार्थं संक्षेपतो ऽत्रविज्ञापनपत्रेपि काश्चिल्लिख्यन्ते। तद्यथा। प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये तामृश्योभूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवत्। एतरेयब्रा० पंचिका ३ अध्याय ३। प्रजापतिः सविता। शतप० काण्डे १० अध्यायः २। तत्र पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः। निरु० अध्याय ४ खं० २१। द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्वो ३ र्योनिरन्तरत्रापि तादुतुर्गर्भमाधात्। निरु० अध्याय० ४ खंड २१। शाम्मद्वह्निर्दुहितुर्नपत्यङ्काद्विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यम्। पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्संशग्म्येन मनसादधन्वे। ऋग् मन्त्रद्वयमिदम्। ज्योतिर्भाग आदित्यः। निरु०। अ० १२। खंड १।

॥ भाषार्थ ॥

"इस भाष्य के अपूर्व होने में तीन कथा दृष्टान्त के लिये इस विज्ञापन पत्र में संक्षेप से लिखते हैं उनमें से एक यह कथा है कि जिसको श्रीमद्भागवतादि नवीन ग्रंथों में बहुत विपरीत करके लिखी है जिस कथा को वेद विरोधी मत वाले नहीं जानके लोगों को मिथ्या बहका के अपने चेले कर लेते हैं और जो वेद मत वाले हैं वे भी सत्य कथाओं को नहीं जानने से और मिथ्या कथाओं को सुन के भ्रान्त होके उनके चेले हो जाते हैं सो देखो चित्त देके कि कितना बड़ा भ्रम मनुष्यों को अज्ञान से हुआ है ( प्रजापतिर्वै० ) प्रजापति नाम है सूर्य का

क्योंकि सब प्रजा का जो पालन होना उसका मुख्य हेतु सूर्य ही है। उसकी दो कन्या हैं। एक द्यौः अर्थात् प्रकाश और दूसरी उषा जो चार घड़ी रात्रि रहने से प्रातः काल पूर्व दिशा में किंचित्प्रकाश होता है क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है वह उसका सन्तान कहाता है सो इन दोनों का पिता की नाईं सूर्य है और उन दोनों को सूर्य की कन्या की नाईं समझना उषा जो सूर्य की उस में पिता जो सूर्य उसने अपना किरण रूप वीर्य को डाला उन दोनों के समागम से यह जो आदित्य अर्थात् प्रकाश मय दिन है। यह एक पुत्र उत्पन्न होता है ॥१॥ तथा इसी प्रकार से पर्जन्य जो मेघ है सो पिता स्थानी है और पृथिवी उसकी कन्या स्थानी है क्योंकि जल से पृथिवी की उत्पत्ति होती है इस से ये दोनों पिता पुत्रवत् हैं सो अपनी कन्या जो पृथिवी उसमें मेघ जो पिता वह वृष्टि द्वारा जल रूप वीर्य को डालता है इन दोनों के परस्पर समागम से गर्भ धारण होने से अन्न औषधि और वृक्षादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं यह पिता और दुहिता की रूपकालंकार कथा से उत्तम विद्या का अत्यन्त प्रकाश होता है इस उत्तम कथा को बिगाड़ के अज्ञानी लोगों ने बुरी प्रकार से लिखी है। दूसरी यह कथा है जिसको बहुत प्रकार से लोगों ने पुराणों में बिगाड़ के लिखी है।"

हाँ, पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि जो पत्र श्री स्वामी जी की सेवा में अनेक लोगों की ओर से पहुँचे हैं उनको भी भली भाँति एकत्र कर देने व प्रकाशित करने की कुछ कम आवश्यकता नहीं है। जो पत्र श्री स्वामी जी के

पत्र के उत्तर में है अथवा श्री स्वामी जी का पत्र जो किसी के पत्र के उत्तर में है—दोनों की बाबत यथोचित उल्लेख हो कि यह अमुक के उत्तर में है अथवा अमुक इसके उत्तर में है। यदि ऐसा किया जायगा तो एक बड़ी उत्तम बात होगी।

अब इस विषय की समाप्ति से पहिले श्री डाक्टर धीरेंद्र वर्मा जी के पास वाले पत्रों में से श्री स्वामी जी के उन तीनों पत्रों को यहाँ दिया जा रहा है जो कि आद्योपान्त श्री स्वामी जी के कर-कमलों से ही लिखे हुये हैं। इन तीनों में से एक संस्कृत में है। उसका भाषा अनुवाद भी दिया जायगा। यह संस्कृत पत्र भाषा अनुवाद सहित और इसके पहले का हिन्दी पत्र दोनों 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दी) पत्रिका प्रयाग में प्रकाशित हो चुके हैं और हिन्दी का पहला पत्र 'सरस्वती' अप्रैल सन् १९४० ई० में मेरे ही एक लेख में छपा है और किसी पुस्तक में नहीं छपा है।

ज्ञात रहे कि यह तीनों पत्र स्वर्गीय श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा जी के नाम के हैं जो कि श्री स्वामी जी के बड़े श्रद्धालु शिष्य थे। यह भारत से बाहर चले गये थे। भारत के क्रान्तिकारी दल के मामिले में इनका विशेष हाथ रहा है। यह भारत में वापस न आ सके थे और विदेश में ही स्वर्ग को सिधारे थे।

(१)

संवत् १९३१ वि० फाल्गुन शु० ८ शनि० ता० १ मार्च सन् १८७९

पंडित श्याम जी कृष्ण वर्मा आनन्दित रहो। ता० २४ फरवरी का लिखा पत्र आपका आया सब हाल विदित हुआ।

मेरी ओर से पाताल देश वासी लोगों* को बहुत बहुत प्रेम प्रीति के साथ आशीर्वाद यथोचित कह के कुशल क्षेम पूँछना। और वे वहाँ कितने दिन रहके किधर किधर जाना होगा जब लाहौर आदि समाजों में जाना हो तब पहिले ही हमको विदित कर देना उचित है उनका सत्कार यथा योग्य सर्वत्र हो। और वे मुंबई में नवीन समाज और थियोसोफिकल सुसाइटी का स्थापन करेंगे सो क्या बात है? समाज तो है ही पुनर्नवीन समाज और थियोसोफिकल का स्थापन करना कुछ समझ में नहीं आया इतना खुलाशा लिखो जिससे समझना सुगम हो। आगे जो रुपयों के विषय में लिखा सो विदित हुआ उन सब की इच्छा हो वेदभाषादि के छपाने में खर्च हो तो अच्छा है आगे इससे अधिक परोपकारक विषय हमको नहीं विदित होता आगे जैसी सब की प्रसन्नता हो सो करें। आगे एक मुन्शी समर्थदान वेदभाष्य का काम वहाँ करेगा यह बड़ा भद्र पुरुष है नागरी पारसी तो अच्छी तरह से जानता है थोड़ी सी अँग्रेजी भी जानते हैं अपने घर का प्रतिष्ठित मातबर पुरुष है पर यहाँ हरद्वार से दो चार दिनों में मुम्बई आने के लिये रवाना हो के वहाँ पहुँचेगा इसको सब काम छापे वालों से और कागज वालों से नियम व्यवहार करा देना और इसको किसी प्रकार का दुःख न हो

* थियोसोफीकल सोसाइटी ( अमरीका ) के प्रधान कर्नल एच० एस० आल्काट और मेडम ब्लेवस्तकी की ओर संकेत है जो स्वामी जी से मिलने के लिये अमरीका से बम्बई में १५ या १६ फरवरी सन् १८७९ को पहुँचे थे।

स्थान आदि का प्रबन्ध कर देना सब से मिलाप भी करा देना और एक चपरासी भी मातबर आगे का हो तो वही नहीं तो कोई दूसरा रखवा देना ठीक ठीक व्यवस्था करा देना चाहिये।

( दयानन्द सरस्वती )

(२)

सं० १९३५ फा० शु० ११ मङ्गल ता० ४ मार्च सन् १८७९

पंडित श्याम जी कृष्ण वर्म्मा आनन्दित रहो तुम्हारा ता० २६ फरवरी का लिखा पत्र आया सब हाल विदित हुआ मैं बहुत शोक इस बात में करता हूँ कि हमारे प्रिय बन्धुवर्ग पाताल देश निवासी लोगों को मुम्बई में आ के मिल नहीं सकता क्योंकि हरद्वार में चैत्र की समाप्ति पर्यन्त ठहरने का नोटिस फाल्गुन शुदी ६ गुरुवार से दे चुका हूँ। और यहाँ इस बात की प्रसिद्धी भी कर चुका हूँ अब इस बात को अन्यथा नहीं कर सकता। जब वे इस देश में लाहौर आदि के समाजों को देखने को आवेंगे तब यहाँ वा कहीं अत्यन्त प्रेम के साथ उन से मिलूंगा और बातचितें भी यथोचित होंगी उन से मेरा आशीर्वाद कह के कुशल क्षेम प्रेम से पूँछना। और जो तुमने समाज के विषय में लिखा कि न आओगे तो यहाँ का आर्य-समाज टूट जायगा क्या तुमने समाज हरिचन्द्र चिन्तामणि के ही भरोसे किया था और जो मेरे आने-जाने पर ही समाज की स्थिति है तो मैं अकेला कहाँ-कहाँ आ-जा सकता हूँ जो समाज में अयोग्य प्रधान हो उसको छुड़ा कर दूसरा नियत करके समाज का काम ठीक-ठीक चलाना चाहिये। कल यहाँ से चल कर मुंशी समर्थदान वेद भाष्य के काम पर नियत हो

के मुम्बई को आते हैं तुम से मिलेंगे छापे वालों और कागज वालों से ठीक-ठीक नियम करा देना और बाबू हरिचन्द्र चिन्तामणि से भी सब पुस्तक पत्रे दिला देना सब हिसाब किताब करा के शीघ्र खुलासा करा देना और इनको मकान आदि का क्लेश कुछ भी कभी न होने पाये।

दयानन्द सरस्वती

(३)

सं० १९३५ फाल्गुन शुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमच्छ्रेपमायुक्तेभ्यः श्रीयुत श्यामजिकृष्णवर्मभ्यो दयानन्द सरस्वती स्वामिन आशिषो भूयासुस्तमांशमिहास्ति तत्रात्यं भवदादीनां च नित्यमाशासे। अग्रे इदं बोध्यमेकं मनस्विनं समर्थदाननामानं पुरुषं वेदभाष्यप्रबन्धार्थं भवत्सनीडं मुम्बापुर्यां वर्त्तमानेऽहनि प्रेषयामि यथासमयमयं तत्र प्राप्स्यत्यस्मै कथंचित्क्लेशो न स्यात्तथानुष्ठेयं वेदभाष्यसम्बन्धिकार्य्याणि संसेधनीयानि नैवात्र विलंबः कार्य्य इति। ये तत्र सभासदः सज्जनाः सन्ति तैः सह संमेलनम्। ये तत्र पाताल देशनिवासिनो वर्त्तन्ते तेभ्योऽत्यन्तादरेणाशिषः संश्राव्य कुशल क्षेमता प्रष्टव्या। यथा मयि प्रीति वर्त्तते तथैवैतस्मिन्प्रेमभावो विधेयो विद्याऽध्ययन सहायः स्थानभृत्य प्रबन्धश्च यथावत्समर्थदानस्य कार्य्य इति च।

दयानन्द सरस्वती

स्वामी जी के उपर्युक्त संस्कृत पत्र का हिन्दी रूपांतर निन है:—

सं० १९३५ फाल्गुन सुदी १२ बुधवार ता० ५ मार्च १८७९

स्वस्ति श्रीमत् उपमायुक्त श्रीयुत् श्याम जी कृष्ण वर्मा को स्वामी दयानन्द सरस्वती के आशीर्वाद। यहां कुशल है, वहाँ आप लोगों के कुशल की आशा करता हूँ। आगे यह जानना कि समर्थदान नाम के एक मनस्वी पुरुष को वेदभाष्य के प्रबन्ध के लिये आज आप के पास बम्बई शहर को भेज रहा हूँ। जिस समय ये वहाँ पहुँचें इन्हें कोई क्लेश न हो इसका यत्न आपको करना चाहिये। वेद भाष्य सम्बन्धी कार्यों को साधन करना है और इसमें अब विलम्ब न होना चाहिये इति। जो सभासद सज्जन वहाँ हैं उनके साथ मिलना चाहिये। वहाँ जो पाताल देश वासी सज्जन हैं उन्हें भी बड़े आदर से आशीर्वाद सुना कर उनका कुशल क्षेम पूछना। जैसा प्रेम मुझमें है वैसा ही प्रेमभाव इनसे भी रखना और विद्याध्ययन में इनकी सहायता तथा समर्थदान जी के ठहरने का स्थान और नौकर का प्रबन्ध कर देना। इति।

दयानन्द सरस्वती

# चतुर्थ अध्याय

# मनोरंजक व अनोखी बातें

श्री स्वामी दयानन्द जी की प्रतिभा अद्वितीय थी। उनका जीवन चरित्र और उनके ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं। उन्होंने बहुत सी बातों को बड़ी गम्भीरता से समझाया व सुलझाया है। पर अनेक अवसरों पर उनकी बातें बड़ी अनोखी व विनोद-पूर्ण ढङ्ग की भी हुई हैं। फलतः इसी प्रकार की कुछ बातें यहाँ पर दी जाती हैं।

( १ )

एक ज्योतिषी जी स्वामी जी महाराज के विचारों से परिचित न थे। अतः स्वामी जी के पास पहुँचे। स्वामी जी ने ज्योतिषी जी से पूछा—आप किस प्रयोजन से आये हैं ?

ज्योतिषी जी—मैं ज्योतिषी हूँ, महाराज ! कुछ प्राप्ति की आशा से आया हूँ।

स्वामी जी—यदि आपको आते समय ज्योतिष द्वारा यह ज्ञान हो गया था कि यहाँ से कुछ प्राप्त होगा तो आपका ज्योतिष झूँठा क्योंकि मैं तो कुछ भी नहीं दूँगा। और यदि आपको यह पता लग गया था कि यहाँ से कुछ नहीं मिलेगा तो आप व्यर्थ ही आये।

( २ )

एक बार एक पंडित जी शास्त्रार्थ के विचार से स्वामी जी के पास आये। स्वामी जी जहाँ थे वहीं एक चबूतरा था और

एक वृक्ष भी था। स्वामी जी नीचे ही एक आसन पर विराजमान थे। पर पंडित महाराज आकर के चबूतरे पर बैठे। लोगों ने इस बात को अच्छा न समझा और पंडित जी से नीचे बैठने के लिये ही प्रार्थना की पर पंडित जी न माने।

ऐसा होने पर स्वामी जी ने लोगों से कहा—कोई हर्ज नहीं। पंडित जी को ऊँचे स्थान पर ही बैठे रहने दीजिये। यदि ऊँचे स्थान पर ही बैठने में बड़ाई है तो वृक्ष पर बैठा हुआ कौवा पंडित जी से भी अधिक ऊँची जगह पर है। अस्तु वही बड़ा हुआ।

( ३ )

जाड़े के दिन थे। श्री स्वामी जी से एक सज्जन राम अधीन ने पूछा—आज कल तो जाड़ा बहुत पड़ता है किन्तु आपको क्यों जाड़ा नहीं लगता ?

स्वामी जी ( रामअधीन से )—आपके मुँह को जाड़ा क्यों नहीं लगा करता ?

रामअधीन—यह सदैव खुला ही रहता है।

स्वामी जी—यही हाल हमारे शरीर का है। यह हर समय खुला रहता है इस कारण इसको जाड़ा नहीं लगता।

( ४ )

श्री स्वामी जी के समय में कुछ लोग बहुत विद्वान समझे जाते थे अथवा वह अपने को बहुत विद्वान मानते थे। ऐसे लोगों से जब यह कहा जाता था कि श्री स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ कीजिये तो इनमें से अनेक लोग नाना प्रकार के बहाने से बचते रहे।

कुछ लोग कहते थे कि वह ( श्री स्वामी जी ) नास्तिक ! है। हम नास्तिक का मुँह देख नहीं सकते। ऐसा सुन कर श्री स्वामी जी कहा करते थे कि यदि मेरा मुँह नहीं देखना चाहते तो परदे की आड़ करके शास्त्रार्थ करें। परन्तु ऐसी दशा में भी कुछ लोगों ने शास्त्रार्थ करना पसन्द न किया। आरा के एक पण्डित जी ने मजबूरन परदे के आड़ से शास्त्रार्थ किया और वह परास्त हुये।

( ५ )

लुधियाना की बात है कि एक पंडित जी शास्त्रार्थ के बीच में अपने साथियों से कहने लगे कि इस दुष्ट ( स्वामी जी ) का मुँह देखना पाप है। सब लोगों को चाहिये कि यहाँ से उठ चलें।

ऐसा सुन कर स्वामी जी बोले—यदि मेरे मुँह देखने में पाप है तो पीठ फेर कर बैठ जाइये पर शास्त्रार्थ करते चलिये।

( ६ )

एक बार श्री स्वामी जी के एक नौकर ने कहा कि आप कहते हैं कि 'राम राम' बार-बार कहने से कुछ लाभ नहीं। ऐसा कहने से क्यों लाभ नहीं। श्री स्वामी जी ने उस समय कुछ उत्तर न दिया। थोड़ी देर के बाद उसका नाम लेकर पुकारा। किन्तु कुछ और न कहा। कुछ देर के पश्चात् फिर उसका नाम लिया और चुप रहे।

श्री स्वामी जी ने कई बार ऐसा ही किया और कुछ न कहा। इस पर नौकर ने कहा कि महाराज आप पुकारते हैं और कुछ नहीं कहते। श्री स्वामी जी ने कहा—जिस प्रकार

तुम्हारा नाम लिया और कुछ नहीं कहा तो नाम लेना व्यर्थ हुआ, उसी प्रकार यदि किसी का केवल नाम लिया जाय और कुछ न कहा जाय तो नाम लेना निरर्थक होता है।

( ७ )

एक नाई को स्वामी जी महाराज के प्रति बड़ी भक्ति थी। वह भोजन ले आया। स्वामी जी खाने लगे। कई ब्राह्मण महाराज भी वहाँ बैठे थे। उन्होंने ऐसा देख कर स्वामी जी से कहा—महाराज ! आप क्या अनर्थ कर रहे हैं। नाई की रोटी खा रहे हैं।

स्वामी जी ने उत्तर दिया—यह रोटी तो गेहूँ की है। नाई की तो नहीं है।

( ८ )

एक दिन श्री स्वामी जी महाराज एक थाली में भोजन कर रहे थे। इतने में एक पौराणिक सन्यासी जी वहाँ पधारे। वह स्वामी जी को देख कर कहने लगे—महाराज धातु का स्पर्श सन्यासियों के लिये वर्जित है। आप थाली में क्यों रोटी खा रहे हैं ?

सन्यासी महोदय का सर मुँडा हुआ था। अतः भोजन के पश्चात् स्वामी जी सन्यासी के सर पर हाथ फेरने लगे और फिर हँस कर बोले—यह सर तो सम्भवतः जूते से साफ कराया गया होगा क्योंकि सन्यासियों को धातु का स्पर्श पाप है।

( ९ )

एक स्थान में दो मुसलमान सज्जन स्वामी जी के पास पहुँचे

और कहने लगे—हमने सुना है कि आप मुसलमानों को आर्य बना सकते हैं!

स्वामी जी—अच्छे मार्ग पर चलने वाले को आर्य कहते हैं। यदि आप उत्तम उत्तम कार्य करने लगेंगे तो आप भी आर्य बन जायेंगे।

दोनों मुसलमान—यदि हम आर्य बन जावें तो क्या आप हमारे साथ भोजन करेंगे?

स्वामी जी—आर्य धर्म के अनुसार किसी को किसी का जूँठा न खाना चाहिये। हाँ एक ही साथ (एक ही बर्तन में नहीं बल्कि पृथक् पृथक् बर्तनों में) खाना दोष नहीं है।

दोनों मुसलमान—जूँठा खाने से तो प्रेम बढ़ता है।

स्वामी जी—यह बात ठीक नहीं है। यदि इस प्रकार से प्रेम बढ़ता है तो कुत्ते जो एक संग खाते हैं वह एक साथ ही खाने वाले परस्पर क्यों लड़ पड़ते हैं।

( १० )

कोई व्यक्ति श्री स्वामी जी को 'बाबा जी' कहा करता था। श्री स्वामी जी ने कहा कि बाबा जी मुझे न कहा करो। पूछा गया कि इसमें क्या बात है? श्री स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इसके अर्थ हैं—घोड़ा नहीं तो खच्चर।

क्योंकि 'वा (विकल्पे) वाजी—अश्व वा अश्वतर'

( ११ )

सुप्रसिद्ध मुसलमान सर सैयद अहमद खां साहब को कौन नहीं जानता। एक बार आप ने श्री स्वामी जी महाराज से कहा—यह बात समझ में नहीं आती कि थोड़े से हवन से वायु

का सुधार कैसे होता है ? महाराज ने कहा—दाल को थोड़ी सी ही चीज़ से बघारा ( छूँका ) जाता है। वह सुगंधित हो जाती है और उसकी सुगंध दूर तक पहुँचती है। इसी प्रकार थोड़े से हवन से वायु में सुगंध फैलती है।

( १२ )

श्री स्वामी जी अपने शरीर पर गङ्गारज लगाया करते थे। किसी ने प्रश्न किया—स्वामी जी आप शरीर पर गङ्गा-रज क्यों लगाते हैं ? स्वामी जी ने उत्तर में कहा—गङ्गा-रज लगाने से मच्छरों के काटने का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा करता।

( १३ )

एक पंडित जी तिलक व भस्म लगाने के बड़े भक्त थे। उन्होंने स्वामी जी से कहा कि जो लोग तिलक व भस्मादि से अपने मस्तक को पवित्र नहीं किया करते वह स्वर्ग में स्थान नहीं पावेंगे।

श्री स्वामी जी महाराज ने हँस कर कहा—यदि तुम सारे मुँह पर कालिख लगा लो तो सम्भवतः सब से ऊँचा स्थान तुम को ही स्वर्ग में मिल सकेगा।

( १४ )

एक बार किसी पंडित जी ने स्वामी जी से पूछा महाराज ! पत्थर में परमात्मा है कि नहीं ?

स्वामी जी—पत्थर में परमात्मा अवश्य है।

पंडित जी—फिर तो उसके पूजने में कोई दोष न होना चाहिए।

स्वामी जी—घड़ियाल में ईश्वर है ?

पंडित जी—अवश्य है।

ऐसा उत्तर पाकर स्वामी जी महाराज ने कहा—तुम कैसी बुद्धि के मनुष्य हो। दो-चार तोले की मूर्ति को सर झुकाते हो। तुम उसकी पूजा करते हो। पर चार पाँच सेर भारी घड़ियाल को लकड़ी से पीटते हो।

( १५ )

एक बार श्री स्वामी जी महाराज गङ्गा के किनारे इस ढंग से लेटे थे कि शरीर का कुछ भाग जल में था और कुछ जल से बाहर पृथिवी में था। इतने में एक मगरमच्छ उधर दिखाई पड़ा। लोगों ने शोर किया और श्री स्वामी जी से ( वहाँ से ) हटने के लिए प्रार्थना की।

श्री स्वामी जी ने कहा—कोई हर्ज नहीं है। मैं उसे नहीं छेड़ूँगा। वह मुझे कष्ट न देगा। अन्त में वह मगरमच्छ वहाँ से चुप-चाप चला गया।

( १६ )

श्री स्वामी जी बनारस में थे। उनके पास एक विद्यार्थी था, वह सनातनी विचार का था। विश्वनाथ महादेव का बड़ा उपासक था। सायंकाल के समय रोज विश्वनाथ जी के दर्शन के निमित्त जाया करता था।

एक दिन स्वामी जी ने उससे पूछा सायंकाल सन्ध्या समय तू कहां चला जाया करता है। विद्यार्थी ने उत्तर दिया—मैं विश्वनाथ जी के दर्शन के लिए चला जाया करता हूँ। इस अवसर पर कई व्यक्ति उपस्थित थे उन्होंने समझा कि स्वामी जी विद्यार्थी को निकाल देंगे। किन्तु स्वामी जी ने केवल इतन

ही कहा—क्या किया जाय, पाषाण पूजते पूजते इस विद्यार्थी की बुद्धि ही पत्थर की हो गई है।

( १७ )

एक बार मेरा* छोटा भाई जयराम एक बैर के पेड़ से फल तोड़ रहा था। स्वामी जी ने मुझे बुलाकर कहा—शिवराम देख तेरा भाई बैरों को स्वामी की आज्ञा बिना तोड़ रहा है।

इस पर मैं ने कुछ उत्तर न दिया। इस के पश्चात् स्वामी जी ने मेरे भाई को बुलाया और उससे पूछा—तू बैर के स्वामी (मालिक) की आज्ञा के बिना क्यों बैर तोड़ रहा था ?

उसने उत्तर दिया—महाराज हमने तोड़ा तो कौन सा पाप किया। सभी लोग तोड़ते हैं। इस पर स्वामी जी ने कहा—यदि सब लोग चोरी करेंगे तो क्या तू भी चोरी करेगा ?

( १८ )

एक व्यक्ति शिव जी पर बेल-पत्र चढ़ाने जा रहा था। स्वामी जी ने उससे कहा—आप शिव की मूर्ति पर चढ़ाने जा रहे हैं वह इसे नहीं खायेगा। हां, इसको किसी पशु के सामने डाल दो तो इसके द्वारा उसकी कुछ भूक अवश्य शान्त हो जायगी।

( १९ )

कहते हैं कि दिल्ली के एक मुसलमान सज्जन ने स्वामी जी से कहा—आप मूर्ति पूजा का खण्डन करते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। यह काम इस्लाम के अनुकूल है।

---

*प्रयाग के स्वर्गीय पंडित शिवराम जी का कथन है। (लेखक)

स्वामी जी—मूर्ति पूजा जिसे हिन्दू लोग करते हैं मैं केवल उसका ही खण्डन नहीं करता हूँ बल्कि मैं सब जातों की मूर्ति पूजा का खण्डन किया करता हूँ। हिन्दुओं की मूर्तियां डील-डोल में चार अंगुल से लेकर कई हाथ ही होती हैं। इन को हटाया जा सकेगा। परन्तु मुसलमानों की मूर्तियां तीन मंजलां मकानों से अधिक ऊँची हैं। प्रश्न यह है कि वह कैसे हट सकेगी।

( २० )

फर्रुखाबाद की घटना है कि स्वामी जी महाराज बहुत से लोगों को यज्ञोपवीत दे रहे थे। उन दिनों में शुक्र देवता अस्त थे। एक पंडित जी ने स्वामी जी से कहा—महाराज! आजकल शुक्र अस्त हैं। इस कारण यज्ञोपवीत कराना निषिद्ध है।

स्वामी जी बोले—हमारा शुक्र अस्त नहीं हुआ है। हम तो अवश्य करायेंगे।

( २१ )

कुछ मनुष्यों ने सोचा कि स्वामी जी सब को मुँह तोड़ उत्तर दिया करते हैं। अतः कोई बात ऐसी पूछनी चाहिए कि स्वामी जी से उत्तर ही न बन पड़े। इस कारण यह निश्चय किया गया कि स्वामी जी से पूछा जाय कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी? यदि कहा—ज्ञानी हूँ तो कहा जावेगा कि आप अभिमानी हैं। यदि अज्ञानी होना स्वीकार किया तो कहा जावेगा जब आप स्वयं अज्ञानी हैं तो दूसरों को क्या ज्ञान दे सकते हैं?

निदान ऐसा सोच-बिचार कर कुछ लोग स्वामी जी के पास पहुँचे और पूछ बैठे—महाराज आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी?

स्वामी जी—मैं कुछ बातों का ज्ञानी हूँ जैसे वेद, शास्त्र आदि विषयों में ज्ञानी हूँ। पर अरबी फारसी व अंग्रेजी आदि भाषाओं में अज्ञानी हूँ।

ऐसा उत्तर पाकर लोग चुप ही हो गये।

( २२ )

एक बार एक पादरी साहब ने श्री स्वामी जी से कहा कि जिस प्रकार महारानी विक्टोरिया* बिना अपने प्रतिनिधि वायसराय के भारत का शासन नहीं कर सकतीं उसी प्रकार परमेश्वर प्रभु ईसा मसीह के बिना मनुष्यों पर धार्मिक शासन व मुक्ति का प्रबन्ध नहीं कर सकता।

श्री स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि उदाहरण ठीक नहीं है। महारानी विक्टोरिया एक देशी और अल्पज्ञ हैं। उन की तुलना ईश्वर से नहीं हो सकती। परमेश्वर सर्व व्यापक और सर्व शक्तिवान है। उसे किसी की सहायता न चाहिए। यदि वह भी माना जावे कि ईसा एक महात्मा पुरुष थे तथापि यह नहीं हो सकता कि परमेश्वर उन की सुफारिश से अन्याय करे और पापी को पाप का फल न दें। वह न्यायकारी है जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा फल अवश्य देगा।

( २३ )

एक पादरी साहब ने श्री स्वामी जी से कहा कि देखिये—

---

*उस समय के भारत का शासन महारानी विक्टोरिया के हाथ में था।

ईसाई धर्म कैसा अच्छा है। प्रभु मसीह सब का पाप स्वयं अपने ऊपर लेकर चले गये।

श्रीस्वामी जी ने उत्तर में कहा—पाप का प्रायश्चित् उस का फल भोगे बिना नहीं हो सकता। यह बात झूठी है कि ईसा सब का पाप अपने ऊपर लेकर चले गये। यह बात तो पापों की पोषक और आश्रयदाता है। लोग यह जानकर कि ईसा पर विश्वास लाने से ही उन के सब पाप दूर हो जांयगे, लोग पाप करने में अधिक प्रवृत्ति होंगे।

( २४ )

श्री स्वामी जी से अनेक अवसरों पर कुछ लोगों ने कहा कि एक ही साथ एक बर्तन में खाने से प्रेम बढ़ता है किन्तु श्रीस्वामी जी ने इस बात को बुरा बतलाया क्योंकि ऐसा होने से कुछ बीमारियाँ एक से दूसरे को लग जाती हैं। इस के सिवा यह भी कहा कि यह बात ठीक नहीं कि एक साथ खाने से प्रेम बढ़ता है। यदि ऐसा होता तों मुसलमान आपस में क्यों विरोध रखते क्योंकि वह लोग एक दूसरे का जूँठा खाते हैं।

( २५ )

श्री स्वामी जी के विरोधी कभी-कभी विचित्र लीला रचा करते थे। एक कवि महाशय ने एक लीला में एक आर्य को सूचक और श्री स्वामी जी उत्तरदाता को महर्षि के रूप में इस प्रकार वर्णन किया है :—

आर्य—तुम्हें बदनाम वह भगवन् सरे बाज़ार[1] करते हैं।
महर्षि—मुझे मशहूर करते हैं बहुत उपकार करते हैं॥
आर्य—चढ़ा कर एक गधे पर आदमी, मुँह कर दिया काला।
पुकारें नाम से भगवन् के, अत्याचार करते हैं॥
महर्षि—मुनव्वर[2] चांदसा[3] मुखड़ा तो है असली दयानन्द का।
वह मसनूई[4] दयानन्दों की मट्टी ख़ार[5] करते हैं॥
आर्य—उठा पत्थर वह मारें रूसियह[6] पर, और कहते हैं।
यह देखो किस तरह स्वामी का हम उपकार करते हैं॥
महर्षि—यही पत्थर था उनका इष्ट जो वह फेंकते हैं अब।
वह गोया[7] इस तरह से इष्ट का तिरस्कार करते हैं॥
आर्य—वह देते सैकड़ों ही गालियाँ हैं शोक भगवन् को।
वह दुर्वचनों की भगवत नाम पर बौछार करते हैं॥
महर्षि—जो दुर्वचनों का होगा खात्मा[8] शुभ वचन सीखेंगे।
उन्हें हम आप शिक्षा के लिये तैयार करते हैं॥
आर्य—तुम्हें वह नीच जाति से बता कर तालियाँ पीटें।
तुम्हारी जाति से नफ़रत[9] का वह इज़हार[10] करते हैं॥
महर्षि—मैं ब्राह्मण जन्म ही से था मुझे वह नीच कहते हैं।
जन्म से नीच हैं सारे वह ख़ुद प्रचार करते हैं॥
आर्य—तुम्हारे ज़ोर को शक्ति का वह ख़ाका[11] उड़ाते हैं।
वह देकर सांड से तश्बीह[12] वह धिक्कार करते हैं॥

---

१ खुल्लम खुल्ला, सब के सामने। २ रोशन, चमकता हुआ। ३ चन्द्रमा के समान। ४ बनावटी, नक़ली। ५ अपमान। ६ काला मुँह। ७ मानो, इस प्रकार। ८ अन्त। ९ घृणा। १० वर्णन, प्रगट। ११ हँसी। १२ उपमा, समानता।

महर्षि—हरि का शुक्र[13] है सारे मेरी शक्ति के हैं क़ायल[14]।
जता ब्रह्मचर्य की अज़मत[15],जगत उपकार करते हैं॥
आर्य—ज़बान[16] को आपकी नश्तर कहें छोटे बड़े भगवन्।
बड़े ही क्रोध से वह लानतो[17] फटकार करते हैं॥
महर्षि—जो कहते हैं बुरा है डाक्टर नश्तर[18] चुभोने पर।
वह उसकी दयालुता का बाद में इकरार[19] करते हैं॥
आर्य—ग़रज़[20] भगवन् की निन्दा मूढ़ हर प्रकार करते हैं।
महर्षि—यह उनकी है दया वह दास का उद्धार करते हैं॥

---

१३ धन्यवाद। १४ मानने वाले। १५ बड़ाई। १६ जिह्वा, जीभ। १७ धिक्कार। १८ घाव चीरने की नोंकदार चीज़। १९ स्वीकार। २० फलतः।

# दूसरा खण्ड

## भूमिका

सत्यार्थ प्रकाश का पहिला संस्करण सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसमें केवल बारह समुल्लास थे। ईसाइयों से सम्बन्ध रखने वाला तेरहवाँ और मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाला चौदहवाँ समुल्लास उसमें नहीं था। परन्तु इस संस्करण के दसवें समुल्लास के अन्त में जो कुछ लिखा है उससे ज्ञात होता है कि श्री स्वामी जी ने ईसाई व मुसलमान मतों के विषय में लिखने का ख्याल उस समय अथवा उससे पूर्व ही किया था।

सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे संस्करण तथा इसके आधार वाले अन्य संस्करणों की जो भूमिका है उसमें भाद्रपद शुक्ल पक्ष सम्वत् १९३९ वि०* अंकित है। इससे स्पष्ट है कि इस संस्करण की सामग्री इस समय तैयार हो गई थी, परन्तु इसके प्रकाशित होने की नौबत (श्री स्वामी जी की मृत्यु के पश्चात्) सन १८८४ ई० में आई थी। इसकी भूमिका के प्रारंभिक शब्दों से विदित होता है कि उक्त दोनों समुल्लास

---

* अर्थात् सितम्बर १९८२ ई०

प्रथम संस्करण में किसी कारण न छप सके थे क्योंकि श्री स्वामी जी ने लिखा है—

"अन्त्य के दो समुल्लास.....किसी कारण नहीं छप सके थे अब वे भी छपवा दिये हैं।"

श्री स्वामी जी की मुठभेड़ ईसाई व मुसलमानों के साथ सन १८७५ ई० से बहुत पहले ही हो चुकी थी। उन के कार्य्य-काल में ईसाई व मुसलमान जो कुछ कर रहे थे और हिन्दुओं पर इन का जैसा प्रभाव था उन से वह भली भांति सचेत थे। दोनों धर्म के लोग ज़ोरों के साथ हिन्दुओं पर अपना सिक्का जमा रहे थे। यही मूल कारण था कि उन्होंने सत्यार्थप्रकाश द्वारा परिचित कराना अत्यावश्यक समझा था। * फलतः

---

* क्योंकि श्री स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश के बनाने के विषय में इसकी भूमिका में लिखा है—

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत होता है इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने

दोनों धर्मों के विषय में जो कुछ थोड़ा सा उन्होंने लिखा था उस पर मैंने कुछ प्रकाश डालने का उद्योग किया है ताकि पाठक उक्त दोनों समुल्लासों से अधिक लाभ उठा सकें।

---

सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

# प्रथम अध्याय

# स्वामी दयानन्द और बाइबिल

सत्यार्थ प्रकाश के त्रयोदश ( तेरहवें ) समुल्लास में श्री स्वामी दयानन्द जी ने बाइबिल के विषय में जो कुछ लिखा है उससे पहले ही अनुभूमिका में यह कहा है—

"इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत हुये हैं जो कि इनके मत में बड़े बड़े पादरी हैं उन्होंने किये हैं उनमें से देव नागरी वा संस्कृत भाषान्तर देख कर मुझको बाइबिल में बहुत सी शंका हुई है उनमें से कुछ थोड़ी सी इस १३ ( तेरहवें ) समुल्लास में सबके विचारार्थ लिखी है।"

सबसे पहले अब यह जान लेना चाहिये कि श्री स्वामी जी महाराज के उक्त कथन में देवनागरी व संस्कृत के जिन भाषान्तरों का उल्लेख है निस्संदेह उनसे उन भाषान्तरों को ही समझना चाहिये जो कि प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों द्वारा हुये हैं और जिनका प्रकाशन भी प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों की ही किसी संस्था द्वारा हुआ है।

हाँ, मैं अपने उक्त कथन के पक्ष में यह कह देना भी चाहता हूँ कि जो ईसाई रोमन कैथोलिक कहे जाते हैं और जिनकी ओर से भी भारत में बहुत सा काम हो रहा है उनके द्वारा बाइबिल का कोई भी भाषान्तर हिन्दी या संस्कृत में नहीं हुआ और इसके सिवा यह भी स्पष्ट है कि तेरहवें समुल्लास में बाइबिल के जो उद्धरण हैं वह उस देवनागरी

बाइबिल से मिलते हैं जो कि प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों द्वारा अनुवादित हैं।

श्री स्वामी जी ने संस्कृत बाइबिल* को अवश्य देखा किन्तु मूल सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में ही लिखा इस कारण तेरहवें समुल्लास में प्रोटेस्टेन्ट ईसाइयों द्वारा प्रकाशित हिन्दी बाइबिल के उद्धरण दिये। निदान इन बातों पर ध्यान पाठकों को भली भांति रखना चाहिये।

प्रोटेस्टेन्ट ईसाई सम्पूर्ण बाइबिल में कुल ६६ ग्रन्थ मानते हैं। जिनमें से निम्नलिखित केवल १४ ग्रन्थों पर श्री स्वामी जी की ओर से १३० समीक्षाएँ हैं :—

(१) उत्पत्ति
(२) यात्रा (निर्गमन)
(३) लयव्यवस्था
(४) गिन्ती (गणना)
(५) समुएल की दूसरी पुस्तक
(६) राजाओं की दूसरी पुस्तक
(७) काल समाचार की पहली पुस्तक
(८) ऐयुब की पुस्तक
(९) उपदेश की पुस्तक
(१०) मत्ती रचित इञ्जील
(११) मार्क रचित इञ्जील
(१२) लूक रचित इञ्जील

* संस्कृत में बाइबिल सन् १८२२ ई० में ही होगई थी। लेखक

( १३ ) योहन रचित सुसमाचार ( इञ्जील )

( १४ ) योहन के प्रकाशित वाक्य

बाइबिल के दो प्रधान खण्ड हैं। एक पुराना नियम ( Old Testament ) दूसरा नया नियम ( New Testament ) अस्तु जो उक्त पहले नौ ग्रन्थ हैं वह पुराने नियम के हैं और बाक़ी पाँच ग्रन्थ नये नियम के हैं।

अब यह ध्यान रहे कि सत्यार्थ प्रकाश के जो उद्धरण हैं वह प्रत्येक हिन्दी बाइबिल में नहीं मिलते। उदाहरणार्थ जानना चाहिए कि तेरहवें समुल्लास के आरम्भ में 'उत्पत्ति' ( तौरेत ) के आरम्भ से दो आयतों के यह शब्द उद्धृत हैं :—

"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बेडौल और सूनी थी ! और गहिराव पर अन्धियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था।। पर्व १। आयत १।२।।"

किन्तु ब्रिटिश ऐन्ड फारेन बाइबिल सोसाइटी इलाहाबाद द्वारा सन् १९१३ ई० में प्रकाशित 'उत्पत्ति' के आरम्भ में उक्त दो आयतों के शब्द यह हैं :—

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथिवी को सिरजा। और पृथिवी सूनी और सुनसान पड़ी थी और गहिरे जल के ऊपर अन्धियारा था और परमेश्वर का आत्म जल के ऊपर मंडलाता था।"

इलाहाबाद से ही 'धर्मशास्त्र का पुरानी वाचा नाम' के नाम से सन् १९०५ ई० की जो पुस्तक प्रकाशित है

उसके आरम्भ में उत्पत्ति की दो आयतों के शब्द इस प्रकार हैं :—

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथिवी को सिरजा, और पृथिवी यों ही सुनसान पड़ी थी और गहरे जल के ऊपर अंधियारा था और परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर ऊपर मंडलाता था।"

कलकत्ता चर्च मिशन छापाखाना की छपी हुई सन् १८३४ ई० की 'उत्पत्ति' में उक्त भाव इन शब्दों में हैं :—

"आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथ्वी को सृजा। और पृथ्वी बेडौल और सूनी थी और गहराव के ऊपर अंधियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था।"

मत्ती रचित इञ्जील "नये नियम" में पहली पोथी है। तेरहवें समुल्लास में समीक्षा ६० इसके विषय में है। और इस इञ्जील के आयत १८ पर्व १ के यह शब्द सत्यार्थ प्रकाश में मिलते हैं :—

"यीशु ख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ उसकी माता मरियम की यूसुफ से मंगनी हुई थी पर उनके इकट्ठा होने के पहले ही वह देख पड़ी की पवित्र आत्मा से गर्भवती है।"

किन्तु "नया नियम" जो इलाहाबाद से सन् १९३६ ई० का प्रकाशित है उसमें मत्ती रचित इञ्जील के पहले पर्व में आयत १८ के शब्द यह हैं :—

"यीशु मसीह का जन्म इस प्रकार से हुआ। जब उसकी माता मरियम की मंगनी यूसुफ से हुई तो उनके इकट्ठे होने से पहले पवित्र आत्मा की ओर से गर्भवती पाई गई।"

बैपटिस्ट मिशन प्रेस कलकत्ता से सन् १८६४ ई० का जो "नया नियम" प्रकाशित है उसमें उक्त आशय के शब्द यह हैं :—

"यीशु खीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ उसकी माता मरियम की यूसुफ से मंगनी हुई थी उनके इकट्ठे होने के पहले वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है।"

परन्तु उक्त प्रेस से ही प्रकाशित "नया नियम" सन् १८४८ ई० में उक्त शब्द इस प्रकार मिलते हैं :—

"यीशु खीष्ट के जन्म की बात यही है। उसकी माता मरियम युसुफ से बचनदत्त हुई, दोनों के इकट्ठे होने के पहले मरियम पवित्र आत्मा से गर्भवती पाई गई।"

अब प्रश्न यह उठता है कि पाठ भेद क्यों हैं ? एक कारण कुछ अंश तक यह है कि बाइबिल के अनेक खण्डों के अनुवाद कई प्रकार की हिन्दी—अवधी, बघेली, ब्रजभाषा छत्तीसगढ़ी, दक्खिनी और कन्नौजी में हुए हैं किन्तु मूल बात यह है कि हिन्दी अनुवादों का समय समय पर सन्शोधन हुआ। इस विषय में छानबीन करने से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ :—

"नया नियम" या "पुराना नियम" अथवा पूर्ण बाइबिल के जो हिन्दी संस्करण सन् १८७४ ई० और सन् १८९९ ई० अथवा इन सालों के बीच के हैं उनका पाठ सत्यार्थ प्रकाश के तेरहवें समुल्लास के उद्धृत पाठों से मिलता है।

अतः लोगों को चाहिए कि उक्त काल की छपी हुई हिन्दी बाइबिल अथवा 'नया व पुराना नियम' संभाल कर रक्खें ताकि आवश्यकता पड़ने पर यह साबित कर सकें कि सत्यार्थ प्रकाश के जो उद्धरण हैं वह ठीक हैं।

इस विषय पर थोड़ा सा प्रकाश पहले ही डाला जा चुका है कि ईसाई लोग अपने धर्म के निमित्त श्री स्वामी जी के कार्य-काल अथवा उससे कुछ पूर्व क्या कर रहे थे। कितने लोग ईसाइयों के चंगुल में फँस रहे थे। यही कारण है कि सत्यार्थ प्रकाश का तेरहवाँ समुल्लास ईसाइयों के विषय में है और इसको मुसलमानों के विषय वाले चौदहवें समुल्लास से पहले शायद इसी कारण रखा गया है कि ईसाइयों के काम या प्रभाव की महत्ता मुसलमानों की अपेक्षा अधिक थी।

# द्वितीय अध्याय

# स्वामी दयानन्द और कुरान

समस्त मुसलमानों की दृष्टि में परम माननीय धर्म ग्रन्थ 'कुरान' है जिसे 'कुरान शरीफ' 'कुरान मजीद' या 'कलामुल्लाह' आदि भी कहा जाता है। यही मूल कारण है कि श्री स्वामी दयानन्द महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में केवल इसी ग्रन्थ की बाबत कुछ लिखा है। अतः जो कुछ उन्होंने लिखा है उसी के विषय में कुछ बातें बतलाई जा रही हैं।

चौदहवें समुल्लास के आरंभ में जो पहली समीक्षा है उसके हवाले के निमित्त 'मंजिल', 'सिपारा' व 'सूरत' शब्द का प्रयोग है। 'आयत' शब्द का प्रयोग वहाँ नहीं है क्योंकि इस शब्द की वहां आवश्यकता न थी। इस समीक्षा के पश्चात् संकेत के रूप में प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर दिये गये हैं। मैं इस सम्बन्ध में पाठकों को पहले कुछ बतला देना आवश्यक समझता हूँ।

(१) कुरान जिन ढङ्गों पर विभक्त किया गया है उनमें से एक ढंग मंज़िल के अनुसार है। कुल सात मंज़िलें समस्त कुरान में मानी गई हैं ताकि जो लोग कुरान का पाठ सात दिन में समाप्त करना चाहें उनके निमित्त एक चिन्ह रहे कि अमुक स्थान तक प्रतिदिन पढ़ना चाहिये। मंज़िल शब्द का अर्थ है—उतरने का स्थान, ठहरने का पड़ाव। यह शब्द

अरबी भाषा का है। इसके निमित्त 'मंडल' शब्द प्रयोग किया जा सकता है।

(२) 'पारा' शब्द फारसी का है। इसी के निमित्त 'सिपारा' शब्द भी बोला जाता है। पारा का अर्थ है—टुकड़ा। इस रीति से सम्पूर्ण कुरान ३० भागों में है ताकि जो लोग समस्त कुरान को एक मास अर्थात् तीस दिनों में समाप्त करना चाहें उनके निमित्त प्रतिदिन का खण्ड स्पष्ट रहे।

(३) सूरत या सूरः के विचार से कुरान में ११४ खण्ड हैं किन्तु कोई सूरत बड़ी है और कोई छोटी। सूरत बकर में ढाई पारे आ जाते हैं और अन्तिम पारे में अनेक सूरत हैं। सूरत का अर्थ—श्रेष्ठता भी है। यह अरबी भाषा का ही शब्द है।

(४) आयत का अर्थ है—चिन्ह। मंज़िल व सूरत के समान यह भी अरबी भाषा का शब्द है। आयत भी कोई छोटी है कोई बड़ी। हिन्दी में इसके लिये वाक्य या अंश प्रयोग किया जाय तो अनुचित नहीं। हाँ, यह भी स्पष्ट रहे कि आयतों की गणना केवल सूरत (सूरः) की ही दृष्टि में रख कर की जाती है क्योंकि सूरत का पद मंज़िल व पारः से श्रेष्ठ माना जाता है।

मैंने मिश्र देश (Egypt) के छपे हुये कुरानों का एक ऐसा संस्करण लिया जिसमें प्रत्येक आयत की संख्या पृथक पृथक अंकित है। इसके साथ ही एक ऐसा ही भारतीय संस्करण लिया। दोनों में आयतों की संख्या का अंक एक सा ही मिला। परन्तु, मैंने देखा कि चौदहवें समुल्लास की

अनेक समीक्षाओं में जो आशय अनेक आयतों के दिये गये हैं उन आशयों या अर्थों वाली आयतों की संख्या जो कुछ वहां बतलाई गई है वह संख्या उन आयतों के निमित्त मिश्री व भारतीय संस्करणों में नहीं मिलती। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि समीक्षा १३ में आयत का अंक ४६ अंकित है किन्तु भारतीय व मिश्री दोनों संस्करणों के अनुसार आयत का अंक ४८ ठहरता है। इसी प्रकार अनेक समीक्षाओं की आयतों के अंकों में कुछ न कुछ भेद अवश्य है।

चौदहवां समुल्लास पहले पहल सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे संस्करण ( सन १८८४ ई० ) में छपा है। इस संस्करण के आरंभ व तीसरे संस्करण के आरम्भ में यह सूचना* ( प्रेस के प्रबन्ध-कर्ता की ओर से ) छपी हुई मिलती है—

"चौदहवें समुल्लास में जो कुरान की मंजिल, सिपारा सूरत और आयत का ब्योरा लिखा है उस में और तो सब ठीक है परन्तु आयतों की संख्या में दो चार के आगे पीछे का अन्तर होना सम्भव है अतएव पाठकगण क्षमा करें।"

इससे प्रगट होता है कि आयतों की संख्या विषयक अशुद्धि का अनुभव कुछ न कुछ अवश्य हुआ था।

---

* संभव है कि उक्त संस्करणों के सिवा किसी अन्य में भी छपी हों किन्तु मेरी दृष्टि में केवल यही दो पुराने संस्करण आये हैं। अनेक संस्करणों में इस सूचना का अभाव अवश्य है। लेखक

ऐसी अशुद्धि क्यों हुई थी। वास्तविक बात यह है कि बीसवीं शताब्दी में जो कुरान छप रहे हैं उन में से अनेक में (सब में नहीं) प्रत्येक आयत की संख्या उस आयत के साथ ही लिख दी गई है। इस से पहले अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के छपे हुये कुरानों में शायद ही कोई ऐसा संस्करण हो जिस में प्रत्येक आयत की संख्या साथ ही साथ दिखलाई गई हो। अस्तु चौदहवें समुल्लास की समीक्षाओं में आयतों की जो संख्या दी गई वह वर्त्तमान काल के अनेक संस्करणों की संख्या से भिन्न ठहरती है। इसका एक कारण यह प्रतीत होता है कि आयतों की संख्या निश्चित करने में कहीं कहीं 'बिस्मिल्ला हिर् रहिमानिर् रहीम' को एक आयत समझ लिया गया है अथवा ऐसा न समझा गया होगा।

दूसरी बात यह स्पष्ट रहे कि श्री स्वामी जी स्वयं अरबी न जानते थे। उन्होंने कुरान के विषय में जो कुछ किया है वह सब दूसरे लोगों की सहायता से किया है। फलतः जिस अथवा जिन के द्वारा कुरान के आयतों की संख्या उनको मालूम हुई है उस अथवा उनसे आयत की संख्या निश्चित करने अथवा बतलाने में भूल हुई है। यही कारण है कि अनेक संख्यायें समीक्षाओं में ऐसी हैं कि वह ठीक ठीक नहीं उतर रही हैं।

इसी सम्बन्ध में यह भी जान लेना चाहिए कि कहीं कहीं समीक्षाओं में आयत का कोई कोई अंक छूट गया है। जैसा कि समीक्षा १४ में वास्तव में तीन संख्याओं का होना आवश्यक है। परन्तु एक ही नहीं बल्कि सत्यार्थ प्रकाश के

अनेक हिन्दी संस्करणों को भी मैंने देखा है। सभों में आयत सम्बन्धी केवल ५० व ६१ अंक हैं। इन अंकों के अनुसार ६२ का अंक होना भी आवश्यक था।

कुरान में कुल ११४ सूरतें (भाग) हैं। इन में से ६२ सूरतों की आयतों (अंशों) पर श्री स्वामी जी की ओर से १५६ समीक्षायें हैं। परन्तु प्रत्येक समीक्षा के अन्तर्गत एक ही आयत नहीं है बल्कि किसी किसी समीक्षा में कई आयतें एकत्र हैं। उदाहरणार्थ जानना चाहिए कि समीक्षा नम्बर २ में दो आयतें एक साथ की हैं और नम्बर ३ में तीन आयतें एक साथ की ही हैं। परन्तु एक साथ के सिवा दूर की आयतें भी एक ही नम्बर में पड़ गई हैं। क्योंकि समीक्षा नम्बर १४ में सूरत बकर की आयत* ५३ और ६५ का खण्ड व ६६ (पूरी) एकत्र हैं।

हां यह भी ध्यान रहे कि समीक्षा नम्बर २२ व २३ की आयतें वास्तव में समीक्षा १४ की एकत्र आयतों के बीच में ५८ व ६० नम्बर की आयतें क्रमानुसार हैं। उन्हीं के खण्ड २२ व २३ नम्बर की समीक्षायें हैं। अतः फिर बतला देता हूँ कि जिन समीक्षाओं में एक से अधिक आयतें हैं उनमें :—

(क) पूरी पूरी आयतें एक साथ की ही हैं या—

---

* ५३,६५ और ६६ की संख्यायें वास्तव में मिश्री व भारतीय संस्करणों के अनुसार हैं। समीक्षा में इन के बदले केवल ५० व ६१ अंक है। एक छूटा हुआ है जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है।

(ख) पूरी आयत व किसी एक आयत तथा अनेक आयतों के खण्ड एक साथ हैं। और किसी समीक्षा में ऐसा एकत्र होना कहीं कहीं तो निकट की आयतों का है और कहीं कहीं दूर दूर की आयतों का है। यही कारण है कि किसी किसी समीक्षा में जो अर्थ व भाव हैं वह एक ही क्रम में नहीं हैं। भाव असंगत हैं। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि समीक्षा नम्बर १४ के शब्द हिन्दी सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में यह हैं :—

"हमने मूसा को किताब और मोजिज़े दिये। हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ। यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको और शिक्षा ईमानदारों को॥ मं० १। सि० १। सू० २। आ० ५०। ६१॥"

इसमें वास्तव में सूरत बक़र की आयत नम्बर ५३ व नम्बर ६५ के अंश और नम्बर ६६ की पूरी आयत का भाव है जो इस रूप में हैं :—

(१) हमने मूसा को किताब और मोजिज़े दिये। (आयत ५३ का खण्ड)

(२) हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ। (आयत ६५ का खण्ड)

(३) यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको, और शिक्षा ईमानदारों को। (आयत ६६ पूरी)

निदान जो लोग चौदहवें समुल्लास से लाभ उठाना चाहें उनको काफी सावधानी से काम लेना चाहिये।

'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' इस नाम से जो पुस्तकें चार भागों में निकली हैं उनके द्वितीय भाग में दीनापुर के बाबू माधो लाल जी के नाम जो पत्र हैं उनमें से एक पत्र २४ अप्रैल सन् १८७६ ई० का श्री स्वामी जी की ओर से अँग्रेजी में है। उसी में है :—

The "Koran" in Nagri is entirely ready but has not been printed yet.

अर्थ—कुरान नागरी में पूरा तैयार है परन्तु अभी तक छापा नहीं गया।❀

उक्त शब्दों से यह प्रगट होता है कि सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में कुरान की बाबत जो कुछ श्री स्वामी जी महाराज ने लिखा है उसे सन् १८७६ ई० के आस-पास में अथवा इस समय के कुछ ही समय बाद लिखा है। यही मूल कारण है कि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में कुरान की बाबत कुछ नहीं छप सका था।

श्री स्वामी जी महाराज ने जो कुछ चौदहवें समुल्लास में लिखा उसमें कुरान की ही बाबत क्यों लिखा? कारण

---

❀ मुझे पता लगा है कि अजमेर में जहाँ श्री स्वामी जी की पुस्तकें सुरक्षित हैं वहाँ हिन्दी कुरान की एक हस्त लिखित प्रति भी है। अनुमान कहता है कि वह प्रति वही है जिसका उल्लेख पत्र में ऊपर किया गया है। ज्ञात रहे कि अब तो हिन्दी में कई व्यक्तियों द्वारा पूर्ण कुरान हो गये हैं किन्तु इससे पूर्व पूर्ण या अपूर्ण कुरान हिन्दी में कोई न था। उर्दू में पूर्ण कुरान केवल दो ही थे।

यह है कि यही एक ऐसा धर्म ग्रन्थ है कि जिसको सब मुसलमान मानते हैं। अस्तु सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है :—

"चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत विषय में लिखा है ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं।"

इसके सिवा चौदहवें समुल्लास की अनुभूमिका में है:— "जो यह चौदहवाँ समुल्लास मुसलमानों के मत विषय में लिखा है सो केवल कुरान के अभिप्राय से, अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा पूरा विश्वास रखते हैं, यद्यपि फ़िरक़े होने के कारण किसी शब्द अर्थ आदि के विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब एक मत है।"

अब यह ज्ञात रहे कि कुरान की आयतों ( अंशों ) का जो अर्थ चौदहवें समुल्लास में दिया गया है वह अर्थ आजकल के अनेक अनुवादकों के अर्थों से कहीं कहीं भिन्न है। मूल कारण यह है कि आज समय बदला हुआ है। अनेक अर्थ काल को दृष्टि में रख कर किये गये हैं ताकि शंकायें न उत्पन्न हों।

बीसवीं शताब्दी ई० में कुरान के जो अनुवाद उर्दू में हुये हैं उनकी भाषा में अरबी व फारसी के शब्द अधिक हैं किन्तु जो अनुवाद उन्नीसवीं शताब्दी के हैं उनकी भाषा सरल है।

यहाँ पर उन उर्दू अनुवादों* का परिचय कराना आवश्यक समझता हूँ जो कि श्री स्वामी जी के उक्त हिन्दी कुरान से पहिले हुये हैं और उस समय में प्रचलित थे। उनकी भाषा श्री स्वामी जी द्वारा लिखित अर्थों से बहुत कुछ मिलती जुलती है। ऐसे अनुवादों से प्रगट हो जायगा कि अनुवाद की जो शैली बीसवीं शताब्दी के पहले की और जो अर्थ का भाव किसी आयत का उन अनुवादों में माना गया है उसी के अनुकूल श्री स्वामी जी द्वारा लिखित अर्थ चौदहवें समुल्लास में भी हैं। यदि समय के बदलने पर कुरान का अर्थ अब दूसरे ढङ्ग पर हो और वह श्री स्वामी जी द्वारा लिखित अर्थों से अथवा उनके पूर्व के अर्थों से न मिले तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। समय की गति और उसकी दशा विचित्र हुआ करती है।

## (१) मौलाना शाह रफ़ीउद्दीन साहब

मौलाना शाह वली उल्ला के यह दूसरे पुत्र थे। पिता ने कुरान का अनुवाद फारसी में किया था। उन्होंने उर्दू में किया है।

यह सन् ११६३ हिजरी ( सन् १७४६ या १७५० ई० ) में पैदा हुये थे। देहान्त सन् १२३३ हिजरी अर्थात् सन् १८१७ या १८१८ ई० में हुआ था। इनका अनुवाद यद्यपि काफी

---

* इन उर्दू अनुवादों की उर्दू और साधारण हिन्दी में बहुत ज्यादा अन्तर आज बीसवीं शताब्दी की उर्दू व हिन्दी के समान नहीं है। अस्तु इस बात का पता आगे चल कर लग जायगा। लेखक

समय पूर्व का हो चुका है तथापि अनेक उर्दू अनुवादों की उपस्थिति में भी आज बीसवीं शताब्दी में काफी छपता तथा बिकता है।

मोजिज़ नुमा मुतवस्सित कुरान शरीफ मुतरजम बदो तरजमः (معجز نما متوسط قران شریف مترجم بدو ترجمہ) के नाम से मूल कुरान दो अर्थों व टीका सहित आकार १०×६½ इंच नूरमुहम्मद कारखाना तिजारत कुतुब क़रीब जामा मसजिद दिल्ली की ओर से सन् १३४५ हिजरी (सन् १९२७ ई०) में प्रकाशित हुआ है। इस में मूल के नीचे प्रथम अर्थ (अनुवाद) मौलाना शाह रफीउद्दीन का है और दूसरा मौलाना अशरफ अली साहब का है। फलतः इसी संस्करण के शब्द आगे चल कर उद्धृत किये जायेंगे और इसी के पृष्ठ का उल्लेख किया जायगा।

## (२) मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब

मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब के यह सगे छोटे भाई थे। सन् ११६७ हिजरी (सन् १७५३ या १७५४ ई०) में पैदा हुये थे। देहान्त का समय ६ रजब सन् १२४३ हिजरी* अर्थात् सन् १८२८ ई० है। इन के द्वारा जो उर्दू अनुवाद हुआ है वह भी आज काफी खपता है।

ग्यारहवीं बार मुंशी नवल किशोर के प्रेस लखनऊ से सन् दिसम्बर १९२६ ई० में एक कुरान १२×८ इंच के आकार मे छपा है। उस के किनारे किनारे मौलाना का किया हुआ

* कहीं कहीं सन् १२३० हिजरी लिखा हुआ है।

अनुवाद छपा है। इसी संस्करण के शब्द आगे चल कर उद्धृत किये जायंगे और इसी संस्करण के पृष्ठ का उल्लेख किया जायगा।

## ध्यान रहे

१—उक्त अनुवादों के जो अन्य संस्करण मिलते हैं उन से भी यदि कोई व्यक्ति आयतों के उन अर्थों का मुकाबिला करे जो कि सत्यार्थ प्रकाश में दिये गये हैं तो कोई हर्ज नहीं।

२—उक्त दोनों अनुवादों के सिवा कुछ अपूर्ण अनुवाद व भाष्य उर्दू में सन् १८७६ ई० तक और हुये थे। यदि उन से लाभ उठाया गया होगा तो बहुत कम। वास्तव में उक्त दोनों से ही लाभ उठाया गया है जैसा कि आगे चल कर ज्ञात होगा कि इन से ही सत्यार्थ प्रकाश के शब्द व भाव बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

श्री स्वामी जी महाराज स्वयं अरबी न जानते थे। कुरान हिन्दी में अन्य लोगों के कारण हुआ था और तब उन्होंने उसके सहारे चौदहवें समुल्लास को लिखा। इसी कारण उन्होंने उक्त समुल्लास की अनुभूमिका में कहा है :—

"जो कुरान अर्बी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देव नागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर करा के पश्चात् अर्बी के बड़े बड़े विद्वानों से शुद्ध करवा के लिखा गया है यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का पहले खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे।"

सन् १८७६ ई० के पहले मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब व मौलाना शाह अब्दुल कादिर साहब के द्वारा ही सम्पूर्ण कुरान के अनुवाद ( अर्थ ) उर्दू में हुये हैं। इन्हीं की ओर संकेत लागू होता है। इन दोनों महाशयों का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। अब नमूने के रूप में यह दिखलाया जायगा कि किसी आयत अर्थात् अंश ( आयत ) का जो अर्थ चौदहवें समुल्लास में दिया गया है वह अर्थ उक्त दोनों महाशयों से कितना मिलता जुलता है। नमूने के रूप में ५ समीक्षाओं का उल्लेख नीचे किया जारहा है।

( १ )

सं० १--आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु। मं० १। सि० १। सू० १।

(क) शुरू करता हूँ मैं साथ नाम अल्लाह बखशिश करने वाले मेहरबान के।

( मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब—पृष्ठ २ )

(ख) शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान निहायत रहम वाला।

( मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब--पृष्ठ २ )

ध्यान रहे कि दोनों मौलानाओं के जिन संस्करणों का उल्लेख पहले किया गया है उन्हीं के पृष्ठों का अंक दिया गया है। परन्तु मं०, सि०, आदि के अनुसार जो पता आयत का दिया गया है उसके द्वारा अन्य संस्करणों से भी मिलान किया जा सकता है और अन्य लोगों के अनुवाद भी देखे जा सकते हैं।

( २ )

सं. ७—अल्लाह ने उनके दिलों कानों पर मोहर कर दी और उनकी आँखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है।

मं० १। सि० १। सू० २। आ० ६।†

(क) मोहर की अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके के और ऊपर कानों उनके के और ऊपर उनकी आँख के पर्दा है और वास्ते उनके अज़ाब है बड़ा।

( मौ० शाह रफीउद्दीन साहब—पृष्ठ ४ )

(ख) मोहर करदी अल्लाह ने उनके दिल पर और उनके कान पर और उनकी आँखों पर है पर्दा और उनको बड़ी मार है।

( मौ० शा० अब्दुल क़ादिर साहब—पृष्ठ ४ )

( ३ )

१०६—क्या नहीं देखा तूने यह कि भेजा हमने शैतानों का ऊपर काफिरों के बहकाते हैं उनको बहकाने कर।

मं० ४। सि० १६। सू० १६। आ० ८१।

(क) क्या नहीं देखा तूने यह कि भेजा हमने शैतानों को ऊपर काफिरों के बिदकाते हैं उनको बिदकाना कर।

( मौ० शा० रफीउद्दीन साहब—पृ० ४४० )

---

* समीक्षा ५ का केवल अन्तिम अंश लिखा गया है।

† आयत की संख्या में कहीं कहीं भेद है। इसकी बाबत लिखा जा चुका है।

(ख) तूने नहीं देखा कि हमने छोड़ रक्खे हैं शैतान मुनकिरों पर उछालते हैं उनको उभार कर।

( मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब—पृ० ३१२ )

( ४ )

सं. ❀१२६—कहा कि कभी न लाभ देगा भागना तुझको जो भागो तुम मृत्यु या क़तल से।

मं० ५। सि० २१। सू० ३३। आ० १६।

(क) कहा कि हरगिज़ न फायदा देगा तुमको भागना अगर भागो तुम मौत से या कतल से।

( मौ० शा० रफीउद्दीन साहब—पृ० ५६२ )

(ख) तू कह कि काम न आवेगा तुमको भागना अगर भागोगे मरने से मारे जाने से।

( मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब—पृ० ४२१ )

( ५ )

सं. १५५—निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर॥ और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर॥

मं० ७। सि० ३०। सूरत ८६। आ० १५, १६॥

(क) तहकीक़ वह मकर करते हैं एक मकर और मैं भी मकर करता हूँ एक मकर।

( मौ० शा० रफीउद्दीन साहब—पृ० ८३१ )

(ख) अलबत्तः वह लगे हैं एक दाव करने में और मैं लगा हूँ एक दाव करने में।

( मौ० शा० अब्दुल कादिर साहब—पृ० ५६६ )

---

❀ १२६ का केवल पहला अंश दिया गया है।

हां यह भी बतला देना उचित समझता हूँ कि कहीं कहीं शब्द इधर उधर गड़बड़ छपे हैं। उदाहरणार्थ जानना चाहिए—

(१) अंक ८ के अन्त में यह शब्द सत्यार्थ प्रकाश के समस्त संस्करणों में हैं—

उस आग से डरो कि जिस का इन्धन मनुष्य है और काफिरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं।

इस इबारत में पत्थर शब्द के ठीक स्थान पर न होने से क्रिया भी बदल गई है। वास्तव में उक्त इबारत इस प्रकार होनी चाहिए—

उस आग से डरो कि जिस का इन्धन मनुष्य है और पत्थर काफिरों के वास्ते तैयार की गई है।

(२) अंक ११ में है—

"बाबा आदम को दण्डवत करो देखा सभों ने—इत्यादि उक्त इबारत में 'देखा' शब्द ठीक नहीं। इस के बदले में 'पस' 'अस्तु' अथवा 'अतः' होना चाहिए।

अब यह भी स्पष्ट रहे कि चौदहवें समुल्लास के अन्तिम भाग में कुछ अन्य बातें भी मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाली हैं उन से भी हमारी जानकारी में अच्छा लाभ हो सकता है।

# परिशिष्ट (१)

## कुछ तिथियाँ

सम्वत् १८८१ वि० ( सन् १८२४ ई० ) को श्री स्वामी जी महाराज का जन्म हुआ।

सम्वत् १८९४ वि० माघ बदी १४ ( शिवरात्रि ) ( सन् १८३८ ई० ) को मूर्ति-पूजा के प्रति अश्रद्धा हुई।

सम्वत् १८९६ वि० में छोटी बहिन का देहान्त हुआ।

सम्वत् १८९९ वि० में चचा की मृत्यु हुई।

सम्वत् १९०१ वि० में घर छोड़ा। सम्वत् १९०३ वि० में अन्तिम बार घर छोड़ा। संन्यास ग्रहण करके 'दयानन्द' नाम धारण किया।

सम्वत् १९१७ वि० में श्री स्वामी विरजानन्द जी की सेवा में मथुरा पहुँचे।

सम्वत् १९२० वि० वैशाख मास ( अप्रैल सन् १८६३ ई० ) से प्रचार कार्य आरम्भ किया।

सम्वत् १९२३ वि० फाल्गुन शुक्ल १ को हरिद्वार के कुम्भ-मेले पर पहुँचे और फिर 'पाखण्ड-खण्डनी पताका' गाड़ी।

सम्वत् १९२६ वि० कार्तिक सुदी १२ मंगल ( १६ नवम्बर सन् १८६९ ई० ) को काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ 'प्रतिमा पूजा विचार' पर हुआ।

सम्वत् १९२९ वि० पौष बदी २ (१६ दिसम्बर सन् १८७२ ई०) को कलकत्ता पहुँचे।

फाल्गुन बदी १० ( २३ फरवरी सन् १८७३ ) के व्याख्यान का अनुवाद कलकत्ता में जनता के सम्मुख अनुवादक ने अशुद्ध पेश किया।

सम्वत् १९३० वि० चैत सुदी एकादशी ( ८ अप्रैल सन् १८७३ ई० ) को पण्डित ताराचरण जी के साथ हुगली में शास्त्रार्थ हुआ।

सम्वत् १९३० वि० पौष कृष्ण २ शनिवार ( ६ दिसम्बर सन् १८७३ ई० ) को काशी में एक संस्कृत पाठशाला खोली गई थी।

सम्वत् १९३१ वि० के ज्येष्ठ ( अर्थात् सन् १८७४ ई० में मई मास ) की किसी तारीख़ को हिन्दी में सब से पहिला व्याख्यान काशी में दिया था।

कार्तिक बदी १५ अर्थात् अमावस्या ( ९ नवम्बर सन् १८७४ ई० ) मंगल को 'वेदविरुद्ध मत खण्डन' की रचना ( संस्कृत में ) समाप्त हुई।

पौष बदी एकादशी ( ३ जनवरी सन् १८७५ ई० ) रविवार को 'शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण' की रचना ( संस्कृत में ) समाप्त हुई।

सम्वत् १९३२ वि० चैत्र शुक्ल १ बुधवार ( ७ अप्रैल सन् १८७५ ई० ) को बम्बई में आर्य समाज सब से पहले स्थापित हुआ और आर्य समाज के नियम बने जो संख्या व विस्तार में दस से अधिक थे।

कार्तिक बदी ३० अर्थात् अमावस्या ( ३० अक्टूबर सन् १८७५ ई० ) शनिवार को 'संस्कार विधि' प्रथम संस्करण का लिखा जाना आरम्भ हुआ था।

भादों सुदी प्रतिपदा ( २० अगस्त सन् १८७६ ई० ) रविवार को 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' का कार्य आरम्भ हुआ।

इस सम्वत् के अन्तिम अर्थात् सन् १८७७ ई० के प्रारम्भिक काल में 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' की छपाई आरम्भ हुई।

सम्वत् १९३४ वि० ज्येष्ठ ( अधिक ) शुक्ल १३ रविवार ( २४ जून सन् १८७७ ई० ) को लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई और आर्य समाज के प्रचलित दस नियम इसी अवसर पर बने।

श्रावण सुदी सप्तमी ( १५ अगस्त सन् १८७७ ई० ) बुधवार को 'आर्य्योद्देश्य रत्नमाला' की रचना समाप्त हुई।

कार्तिक शुक्ल २ ( ७ नवम्बर १८७७ ई० ) बुधवार को 'भ्रान्ति-निवारण' की रचना समाप्त हुई।

भौमवार मार्गशुक्ल ६ सम्वत् १९३४ वि० ( ११ दिसम्बर सन् १८७७ ई० ) को 'ऋग्वेद भाष्य' का कार्य आरंभ हुआ।

पौष सुदी ११ ( १७ जनवरी सन् १८७८ ई० ) गुरुवार को 'यजुर्वेद भाष्य' का कार्य आरंभ हुआ।

सम्वत १९३५ वि० में 'ऋग्वेद व यजुर्वेद भाष्य' की छपाई आरंभ हुई।

सम्वत् १९३६ वि० माघ शुक्ल २ वृहस्पतिवार ( अर्थात् १२ फरवरी सन् १८८० ई० ) को काशी में वैदिक यन्त्रालय स्थापित हुआ था जो कि बाद को सन् १८८१ ई० में प्रयाग और फिर सन् १८९१ ई० में अजमेर में पहुंचा जहां कि अब भी है।

शनिवार माघ सुदी ४ ( १४ फरवरी सन् १८८० ई० ) को 'वर्णोच्चारण शिक्षा' ( वेदाङ्ग प्रकाश का प्रथम अङ्ग ) की रचना समाप्त हुई।

'संस्कृत वाक्य प्रबोध' (वेदाङ्ग प्रकाश का द्वितीय अङ्ग) रचा गया।

शुक्रवार फाल्गुन सुदी १५ ( २६ मार्च १८८० ई० ) को 'व्यवहार भानु' ( वेदाङ्ग प्रकाश के तीसरे अङ्ग ) की रचना हुई।

सम्वत् १९३७ वि० ज्येष्ठ बदी २ ( २७ मई सन् १८८० ई० ) वृहस्पतिवार को 'भ्रमोच्छेदन' की रचना समाप्त हुई।

भाद्र सुदी ८ ( १२ सितम्बर सन् १८८० ई० ) रविवार को यजुर्वेद के सातवें अध्याय के मन्त्रों का भाष्य किया जा रहा था।

फाल्गुन बदी १० ( २४ फरवरी सन् १८८१ ई० ) गुरुवार को 'गोकरुणानिधि' की रचना समाप्त हुई।

'सन्धि विषय' ( वेदाङ्ग प्रकाश के चौथे अङ्ग ) की रचना हुई।

सम्वत् १९३८ वि० चैत सुदी १४ बुधवार ( १३ अप्रैल १८८१ ई० ) को 'नामिक' ( वेदाङ्ग प्रकाश के पांचवें अङ्ग ) की रचना समाप्त हुई।

बुधवार भाद्र बदी ८ ( १७ अगस्त १८८१ ई० ) को 'कारकीय' ( वेदाङ्ग प्रकाश के छठे अङ्ग ) की रचना समाप्त हुई।

रविवार भाद्र शुक्ल १२ ( ५ सितम्बर १८८१ ई० ) को 'सामासिक' ( वेदाङ्ग प्रकाश के सातवें अङ्ग ) की रचना समाप्त हुई।

शनिवार अगहन शुक्ल ५ ( २६ नवम्बर १८८१ ई० ) को 'स्त्रैणताद्धित' ( वेदाङ्ग प्रकाश के आठवें अङ्ग ) की रचना समाप्त हुई।

'अव्ययार्थ' (वेदाङ्ग प्रकाश के नवें अङ्ग) की रचना समाप्त हुई।

सम्वत् १९३९ वि० में 'आख्यातिक' ( वेदाङ्ग प्रकाश के दसवें अङ्ग ) का रचना हुई।

चन्द्रवार भाद्रशुक्ल १३ ( २५ सितम्बर सन् १८८२ ई० ) को 'सौवर' ( वेदाङ्ग प्रकाश के ग्यारहवें अङ्ग ) की रचना समाप्त हुई।

आश्विन शुक्ल ( अक्टूबर सन् १८८२ ई० ) में 'पारिभाषिक' ( वेदाङ्ग प्रकाश का बारहवां अङ्ग) रचा गया।

शनिवार अगहन सुदी १ ( २६ नवम्बर सन् १८८२ ई० ) को 'यजुर्वेद भाष्य' की रचना समाप्त हुई।

गुरुवार अगहन शुक्ल ४ ( १४ दिसम्बर सन् १८८२ ई० ) को 'निघण्टु' (वेदाङ्ग प्रकाश का सोलहवां अङ्ग) संशोधित होकर सम्पादित हुआ।

गुरुवार पौष बदी १० ( ३ जनवरी १८८३ ई० ) को 'धातुपाठ' ( वेदाङ्ग प्रकाश के तेरहवें अङ्ग ) की रचना समाप्त हुई।

बुधवार माघ बदी १ ( २४ जनवरी सन् १८८३ ई० ) को 'उणादि कोष' ( वेदाङ्ग प्रकाश का पन्द्रहवा अङ्ग ) तैयार हुआ।

शुक्रवार माघ शुक्ल १० (१६ फरवरी सन् १८८३ ई०) को 'गणपाठ' ( वेदाङ्ग प्रकाश का चौदहवां अङ्ग ) तैयार हुआ।

सम्वत् १९३९ वि० फाल्गुन कृष्ण ५ मंगलवार ( २७ फरवरी सन् १८८३ ई० ) को उदयपूर में 'स्वीकार पत्र' लिखा गया अर्थात् 'परोपकारिणी सभा' की स्थापना हुई।

सम्वत् १९४० वि० आषाढ़ बदी १३ ( १ जुलाई सन् १८८३ ई० ) रविवार को 'संस्कार विधि' के दूसरे अर्थात् संशोधित संस्करण के तैयार करने के लिये विचार हुआ।

आश्विन बदी १३ (२९ सितम्बर सन् १८८३ ई०) को ( अन्तिम बार ) जोधपुर में रात के समय विष दिया गया।

दीपावली ( कार्तिक की अमावस्या ) मंगलवार ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को ६ बजे के लगभग सायंकाल के समय अजमेर में स्वर्ग लोक को सिधारे।

---

# परिशिष्ट (२)

## कुछ अन्य बातें

१—श्री स्वामी जी महाराज लगभग ३६ वर्ष की आयु तक ( ब्रह्मचर्य के साथ ) केवल संस्कृत विद्या की प्राप्ति में लगे रहे तब उन की तृप्ति ( विद्या के निमित्त ) हुई। कौन नहीं जानता कि इतनी आयु के भीतर ही बहुत से लोग बहुत कुछ हो जाना चाहते हैं।

२—उन्होंने केवल संस्कृत ही पढ़ कर जो काम कर दिखाया वह अति प्रशंसनीय है।

३—संस्कृत को वह बहुत आगे बढ़ाना चाहते थे और उन के द्वारा हिन्दी में भी बहुत कार्य हुआ है।

४—वेदों का जितना मान उनके हृदय में था वह भी कुछ कम प्रशंसनीय नहीं है।

५—उनकी कई रचनायें प्रश्न व उत्तर के रूप में हैं ताकि लोगों को समझने में सुगमता हो और उनके पढ़ने में खूब जी लग सके।

६—मनुष्य मात्र के सिवा वह पशुओं पर भी अच्छे दयालु थे।

७—जब उन्होंने प्रचार कार्य आरंभ किया तो पहले कई वर्ष अनुभव और तैयारी में व्यतीत हुये।

८—प्रचार-कार्य आरम्भ करने के पश्चात् बहुत भ्रमण किया। किन्तु जब श्रीस्वामी विरजानन्दजी महाराज की सेवा में

मथुरा पहुँचे थे तो उस के पूर्व भी बहुत भ्रमण किया था। निदान उन के जीवन के लगभग ३५ वर्ष भ्रमण में ही व्यतीत हुये थे।

९—उन के समय में समाचार पत्र बहुत ज्यादा न थे तथापि उन की धूम थोड़े ही काल में बहुत ज्यादा मच गई, यहां तक कि विदेशों में भी उनकी अक्षय कीर्ति फैली।

१०—महाराज जी व्याख्यान के पश्चात् शंका समाधान का अवसर बहुधा दिया करते थे। यदि समय काफ़ी न रहता था अथवा जो लोग सर्व साधारण के सन्मुख अपनी जिज्ञासा दूर करना पसन्द न करते थे वह लोग उन के ठहरने के स्थान पर पहुँचा करते थे और अपनी तृष्णा शान्त करते थे।

११—इसी पुस्तक के पृष्ठ ४६ में बतलाया जा चुका है कि श्री स्वामी जी द्वारा कुल लिखित सामग्री लगभग पन्द्रह हज़ार पृष्ठों की ठहरती है। अतः भली भांति यह ज्ञात रहे कि उन पृष्ठों में से दो हज़ार से अधिक पृष्ठ खण्डनात्मक नहीं ठहरते।

१२—अपने उद्देश्य की पूर्ति में श्री स्वामी जी महाराज को अनेक लोगों से बड़ी सहायता मिली थी किन्तु अनेक लोगों की ओर से उनको नाना प्रकार के कष्ट भी पहुँचे थे।

# श्रीमद्-दयानन्द-भ्रमण

१.—इस में उन स्थानों का वर्णन है जो श्रीस्वा महाराज द्वारा गौरवान्वित हुये हैं। बतलाया गया प्रत्येक ऐसा स्थान कहाँ है और किसी मुख्य स्थान से किस ओर तथा कितनी दूरी पर है।

२.—किसी स्थान में एक ( या अनेक ) बार कब पधारे।

३.—कब कहाँ से प्रस्थान किया।

४.—इस प्रकार के स्थानों में यदि रेल-मार्ग चालू हुआ तो कब।

५.—जिन स्थानों के नाम अनेक जीवन-चरित्र में अशु छपे हैं उनको ठीक ठीक लिखा गया है।

६.—इस में एक ऐसा नक्शा भी रहेगा जिससे मह के पदारोपित स्थानों का ज्ञान बहुत ही सुगमता के सा अन्द हो सकेगा।

निदान अपने ढंग की अनोखी पुस्तक है। यथासंभ शीघ्र प्रकाशित होगी। महर्षि दयानन्द सरस्वती के लेखक इस अपूर्व पुस्तक के कर्त्ता धर्त्ता हैं।

१५-११-१९४१

**मैनेजर आलिम फ़ाज़िल बुकडि**

मुहतशिम गंज, इलाहाबाद

Printed by Vishwa Prakash at the Kala Press, Allahabad.

972

दयानन्द महिला

पुस्तक मिलने के पते :—

(१) मैनेजर आलिम फ़ाज़िल बुकडिपो

मुहतशिमगंज, इलाहाबाद सिटी

(२) मैनेजर, कला प्रेस,

जीरोरोड, इलाहाबाद सिटी